हमारी वनस्पति सम्पदा १

•

रामेश बेदी

१९८४

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री सस्ता साहित्य मंडल
एन ७७ कनाट सर्कस, नई दिल्ली-११०००१

पहली बार १९८८
मूल्य रु० १५ ००

मुद्रक
संजय प्रिंटर्स, मानसरोवर पार्क, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

प्रकाशकीय

वनस्पति-सम्पदा की दृष्टि से हमारा देश अत्यन्त समृद्ध है। उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूर्व से लेकर पश्चिम तक नाना प्रकार के वृक्ष और लताए न केवल देश की शोभा मे चार चाद लगाते है, उसकी भूमि को शस्य-श्यामला बनाते है, अपितु देशवासियो को जीवन-दायिनी जलवायु भी प्रदान करते है। हमारा पुरातन साहित्य तो वनस्पति की महिमा और गुणा की गाथा से भरा पडा है।

भारतीय जीवन की एक विशेषता रही है और वह यह कि जो भी वस्तु उसके लिए उपयोगी होती है, उसे वह धर्म के साथ जोडकर मान सम्मान प्रदान करता है।

हमारी इस वनस्पति-सम्पदा को पाठक भली प्रकार समझें, इस उद्देश्य से हमने इस पुस्तक माला को आरम्भ किया है। इनके लेखक से हिन्दी जगत भली प्रकार परिचित है। उन्होने वनस्पतियो तथा वन्य प्राणियो के विषय मे बडे मूल्यवान साहित्य की रचना की है। इस समय चार पुस्तकें पाठको को सुलभ हो रही है

१ पूजा के पेड पौधे, २ हमारी पुष्प श्री, ३ हमारे पोषक फल, ४ गुणकारी तुलसी।

पहली पुस्तक मे उन पेड-पौधो का परिचय दिया गया है जिनके साथ पूजा की भावना सलग्न है। दूसरी पुस्तक मे उन चुने हुए पुष्पो की जानकारी दी गई है जिन्हे हम प्राय देखते हैं, किन्तु जिनके विषय मे हमारा ज्ञान बहुत ही सीमित है। तीसरी मे उन फलो का वर्णन किया गया है, जो हमारे स्वास्थ्य का सम्वर्द्धन करते है और चौथी पुस्तक मे तुलसी के धार्मिक रूप तथा गुणो पर विशुद्ध प्रकाश डाला गया है।

पुस्तको की सामग्री प्रामाणिक है। उनसे जहा [illegible] होता है वहा यह भी पता चलता है कि हमारे पास कितनी [illegible] है और यदि हम उसकी उपादेयता को भली प्रकार समझकर उसका सरक्षण और अपने जीवन मे ठीक-ठीक उपयोग करें तो हमे कितना लाभ हो सकता है।

हमे पूरा विश्वास है कि पाठक इन सब पुस्तको को स्वय तो पढेंगे ही, और भी बहुत से हाथो मे पहुचाने मे सहायक होंगे।

अनुक्रम

□

□□

पूजा

के

पेड़-पौधे

•

हरिप्रिया
तुलसी

जन-सामान्य मे इस पौधे का सबसे अधिक प्रचलित नाम 'तुलसी' है। यह नाम बहुत पुराना नही है। चरक, सुश्रुत, काश्यप सहिता आदि सहिताओ मे हम इस नाम को नही देखते। 'अष्टाग हृदय' मे 'तुलसी' शब्द नही आया। पाचीन समय मे इसे 'सुरस' और 'अपेत राक्षसी' कहा जाता था। चरक और 'काश्यप सहिता' मे प्राय अकारान्त पुल्लिग शब्द 'सुरस' का प्रयोग हुआ है और 'सुश्रुत सहिता' मे अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द 'सुरसा' का। सुश्रुत का टीकाकार डल्हण 'सुरसा' का अथ तुलसी इति लोके' लिखता है। इसका मतलब है कि डल्लण के समय मे (१०६०-१२६० के बीच मे) इस पौधे को लोक मे तो अवश्य 'तुलसी' कहने लग गये थे। सस्कृत साहित्य मे इस नाम का उल्लेख हमे पहले-पहल मध्यकाल मे लिखे गये पुराणो मे मिलता है। इन पुराणो का रचनाकाल सातवी शताब्दी है। फिर बाद के बने द्रव्य गुण के ग्रन्थो मे इस नाम का समावेश कर लिया गया। पुराणो मे इसका अति प्रसिद्ध एक नाम 'वृन्दा' है। आयुर्वेद के चिकित्सा ग्रथो मे और द्रव्य गुण के निघण्टुआ मे भी यह नाम कही नही आया। चरक, सुश्रुत के सरस और अपेत राक्षसी नाम पौराणिक साहित्य मे उपलब्ध नही होते।

उत्पत्तिबोधक नाम ग्राम्या सुलभा (गावो मे भी सब जगह सुगमता से मिल जाती है)।

परिचय-ज्ञापक सज्ञा रम्या (रमणीय), सुरभि, सुगध

(सुगंधित पौधा), सुरस, सुरसा (पत्ते रसमय होते हैं, अथवा सुगंधित रस वाला), वहु पत्री (बहुत पत्तो वाला), स्वादु गंधच्छदा (जिसके पत्तो से प्रिय गन्ध आती है), वृन्दा जिस पर फूल समूहो—वृन्द—मे लगते है, अथवा एक पौराणिक गाथा के अनुसार विष्णु भगवान से अभिशप्त 'वृन्दा' नाम की एक सती स्त्री (विष्णु पर पूजार्थ चढाई जाने के लिए भूलोक मे तुलसी पौधे के रूप मे बन गई), मजरी (मजरियो वाला पौधा), सुमजरी (मजरिया सुन्दर लगती है), वहु-मजरी (बहुत मजरियो वाला), त्रिदश मजरी (मजरियो वाला यह पौधा देवो—त्रिदश—को प्यारा है), भूतेष्टा, भूत प्रिया (सब प्राणिया को प्यारा है), सुरेज्या (देवताओ से पूजा जाने वाला, अथवा देवो पर पूजा मे चढाया जाने वाला), वैष्णवी (फैल जाने वाला, बीज से इसका विस्तार आसानी से सब जगह हो जाता है, अथवा विष्णु पर पूजार्थ चढाया जाने वाला, अथवा वैष्णवो का प्रिय पौधा), विष्णु वल्लभा, विष्णु प्रिया, हरि प्रिया (विष्णु देव का प्रिय), कृष्ण प्रिया (श्रीकृष्ण का प्रिय पौधा), तुलसी (पौराणिक गाथा की एक पतिव्रता स्त्री, जिसके सौन्दर्य की तुलना न हो सकने से उसका नाम 'तुलसी' पडा और बाद मे नारायण के वर से वह शालिग्राम की पूजा के लिए तुलसी पौधे के रूप मे पैदा हो गई)।

गुण प्रकाशक नाम सुरसा (जो मुख मे खूब लाला—रस—ला दे), भूतघ्नी, दैत्यघ्नी, अपेत राक्षसी (राक्षस रूप रोग कृमियो को भगा देने वाला), पापघ्नी (रोग रूप पाप का नाशक), तुलसी (रोगादियो का सहार करने मे जिसकी तुलना मे और कोई न हो, 'तुला सादृश्य स्यति नाशयति', अथवा इस पौधे के

प्रभाव से मृतप्राय व्यक्ति—"तु-भी दीप्ति को लसति" (प्राप्त करता है), पूत पत्नी (पत्तो का प्रयोग शरीर का पवित्र करता है), पावनी (सारे पौधे मे ही पवित्र करने का गुण है, इसलिए), सुभगा (यह कल्याणकारी पौधा है), कायस्था (शरीर को स्थिर करता है), तीव्रा (तेजी मे गुण करने वाले), सरला (चिकित्सा मे सरलता से उपयोग किये जाने वाले), सुर दुदुभि, देव दुदुभि (इस पौधे मे देव—श्रेष्ठ गुण—बसते है, यह देवो-श्रेष्ठ गुणो का नगाडा है)।

लगाने से लाभ

हिन्दू स्त्रिया और भक्त लोग तुलसी को सदा घरो मे रोपते है। जब घर बन रहे होते है, तो उनमे तुलसी के लिए अलग स्थान रख लिया जाता है। बडे घरो मे तो एक बडे चबूतरे मे इसे लगाते है। इस स्थान को 'तुलसी वृन्दावन' कहते हैं। भक्तजन नियम से इन पौधो को सीचते है। वे हमेशा इस बात का ध्यान रखते है कि इनकी बाढ तो ठीक हो रही है।

इस तरह सेवा करने से घरो मे पौधे खूब पनप जाते हैं और इनकी जडे जमीन मे फैलती चली जाती हैं। जबतक पौधे लगे रहते है, घर के लोग उनका उपयोग करते है। यह उनको सदा नीरोग रखती है। उनके घर मे से बहुत पुरानी बीमारिया भी निकल जाती है।

तुलसी लगाने का प्रचार बढे, उचित देख-रेख मे पौधे खूब फूले-फले और घर वालो को स्वस्थ रखे—इस दृष्टि से इसकी सुव्यवस्थित खेती भी धर्म का अंग बना दी गई, जिससे कर्तव्य समझकर इसे हर घर में अवश्य लगाया जाया करे।

अच्छा फल मिलने की आशा से मनुष्य को काय करने मे उत्साह होता है। इसलिए ब्राह्मणो ने धर्मग्रथो मे लिखा

"तुलसी की जडो मे उग आने वाले घास पात को निलाई करके चुनने वाले से हुई ब्रह्महत्या को भी विष्णु भगवान् क्षमा कर देते है। गर्मियो मे ठण्डे सुगन्धित पानी से तुलसी को सीचने वाला मोक्ष को प्राप्त करता है। विशेषत गर्मियो मे तुलसी को छाया मे ठण्डी जगह पर रखकर बचाने वाला सब पापो से छूट जाता है। वैशाख मे तुलसी को रोज सीचने वाला अश्वमेध के फल को पाता है, और जो मनुष्य कभी-कभी दूध से भी तुलसी को सीच देता है, उसके घर मे लक्ष्मी स्थिर होकर वास करती है। तुलसी के नीचे गोबर का लेप करने वाला और झाड़ू से बुहार कर रोज सफाई करने वाला सदा प्रसन्न रहता हुआ ब्रह्मा के साथ रहता है।"

उपयोगी भाग

तुलसी के पत्ते, मूल, फल और बीज, प्राय पौधे का प्रत्येक भाग चिकित्सा के काम आता है। हरा पौधा न मिल सकता हो तो उसे काटकर छाया मे सुखाकर रख लेते है। इसे कषाय, वटी, तेल आदि विविध योगो मे अकेला या अन्य द्रव्यो के साथ उपयोग करते है।

धर्म-कर्म मे पत्ते, मजरिया और पौधे की जड की मिट्टी काम आती है। वृन्दावन मे एक प्रकार की चिकनी मिट्टी होती है, जिसे घिसकर चन्दन की तरह लेप किया जाता है। जब यह मिट्टी (गोपी चन्दन) न मिलती हो, तो तुलसी की जड की मिट्टी का लेप करते हैं। इससे भी वैसा ही लाभ कहा जाता है।

तुलसी का विवाह

पुराणो मे विष्णु के साथ तुलसी के पौधे का विवाह करने का उपदेश किया गया है। पौधे को खूब पाल-पोसकर बडा किया जाता है। घर मे जैसे कन्या को पालते है, वैसे ही तुलसी को घर मे रखते है। कन्या के विवाह की तरह इसके विवाह मे भी आजकल धनी लोग हजारो रुपया खर्च करते है। १३ नवम्बर १६५१ के *'हिन्दुस्तान'* (दिल्ली) मे प्रकाशित एक समाचार के अनुसार एक सेठानी ने तुलसी का विवाह सालिगराम से रचाने मे बीस हजार रुपये खर्च किये थे। विष्णु की प्रतिमा सोने की बनाई जाती है। शुभ मुहूर्त मे, सामान्यतया कार्तिक मास मे, खूब धूम-धाम से विवाह रचा जाता है। जप, यज्ञ, दान, दक्षिणा और बाजे-गाजे के बीच मे बरात आती है। विवाह की सम्पूर्ण विधि की तरह यहा भी वेदी बनाकर मन्त्रो के उच्चारण के साथ ब्राह्मण विधि-पूर्वक विवाह कराता है। हर साल कार्तिक महीने मे यह विवाह रचाने से कार्तिक-व्रत की सिद्धि, कन्यादान का फल, मोक्षप्राप्ति आदि फल मिलते लिखे है।

'गौरीतन्त्र' मे सदाशिव पार्वती को बतलाते है कि साधुओ के साथ जो तुलसी का विवाह करते है, उनके पुण्य का तो कोई अन्त नही।

महाराष्ट्र मे गन्ने के साथ तुलसी का विवाह करने की प्रथा प्रचलित है।

तुलसी का विवाह करने से अक्षय पारलौकिक फल मिलने की इन बातो पर विश्वास और श्रद्धा करने वालो की सख्या कम नही। आशा है, विद्वान् लोग इन बातो पर प्रकाश डालेंगे।

लोगो को कन्यादान के महत्त्व का पता लगे और लडकियो का वध करने की जो घृणित प्रथा मध्यकाल मे चल पडी थी, वह रुक जाय, इस उद्देश्य से शायद 'तुलसी विवाह' किया जाने लगा हो।

तोडने की विधि

"गोविन्द के हृदय को प्रफुल्लित करने वाली माता तुलसी मैं तुझे नारायण की पूजा के लिए तोडने लगा हू। तुझे नमस्कार। तेरे बिना हरश्रृगार आदि फूलो और तरह-तरह के सुगधित पदार्थों की भेंटो से भी हरि की तृप्ति नही होती। कल्याण-कारिणी! इसीलिए मैं तुझे तोडने लगा हू। हे महान् ऐश्वय-वाली! तेरे बिना तो सब कम निष्फल रह जाते है। तुलसी देवी! इसीलिए मैं तुझे तोडने लगा हू, मेरे लिए कल्याण-कारिणी बन जा। तोडने से तेरे हृदय (जडो) पर जो आघात पहुचे, दिव्य गुणो वाली! तू उसके लिए क्षमा कर देना। जगन्माता तुलसी, तुझे नमस्कार।"

विष्णु का प्यारा मनुष्य स्नान करके, पवित्र वस्त्र पहन-कर और हाथ जोडकर यह स्तुति करने के बाद हर्ष से तीन बार तालिया बजा-बजाकर तुलसी के पत्तो को इतना धीरे-धीरे तोडना प्रारम्भ करे कि छोटी शाखा भी न टूटे, जिससे पौधे को हानि पहुचे। असावधानी से, जल्दी-जल्दी तोडने से, शाखाए टूट जायगी और पौधे की जड हिल जायगी, जिससे पौधा मर सकता है।

दाहिने हाथ से पत्तो को एक एक करके तोडकर साफ बरतन मे रखते जाना चाहिए। तुलसी की मजरियो को तोडने

का यही विधि है। आवश्यकता के बिना इस उपयोगी पौधे को तोडकर व्यर्थ नष्ट नही करना चाहिए।

नहाये बिना ही जो मनुष्य तुलसी को तोडकर पूजा करता है, वह अपराधी होता है और उसकी पूजा निष्फल जाती है। पूर्णिमा, अमावस, द्वादशी और संक्रान्ति के दिन, दुपहर को, रात मे, रात और दिन की ठीक सन्धिवेलाओ मे, अपवित्र स्थान पर (जैसे घर मे मृत्यु हुई हो) और अपवित्र समय मे तुलसी नही तोडनी चाहिए। 'विष्णु धर्मोत्तर' के अनुसार विष्णुपूजा के लिए द्वादशी को छोडकर शेष सब दिनो मे तुलसी दल तोड सकते है।

चिकित्सा मे उपयोग

भारत के देशी और विदशी सिविल सर्जनो तथा दूसरे डॉक्टरो ने तुलसी को विविध रोगो की चिकित्सा मे सफल परिणामो के साथ बरता है। आगे के पृष्ठो मे हम उनके अनुभवो को आयुर्वेद के प्राचीन चिकित्सको के अनुभवो के साथ दे रहे हैं।

महास्रोतस् के रोग

आमाशय मे और आतो के अन्दर तुलसी का प्रभाव वातशामक है। ताजा रस उलटियो को रोकता है और कहा जाता है कि कीडो को भी मारता है। तुलसी के पत्ते, बेर की गुठली तथा खाड प्रत्येक तीन सौ मिलीग्राम और काली मिर्च एक सौ मिलीग्राम को पानी के साथ रगडकर गोलिया बना ले। ये गोलिया वमन मे देने से लाभ करती हैं। पत्तो के रस मे दारु-

चीनी का चूर्ण मिलाकर उलटियो को रोकने के लिए पिलाया जाता है। बीजो को पीसकर गौ के दूध के साथ उलटियो और दस्तो मे दिया जाता है। दस्तो मे सूखे पौधे का काढा उत्तम उद्दीपक औषध होता है। इससे लाभ न हो तो पचाग के फाण्ट मे जायफल का चूण मिलाकर पिलाने से दस्त बन्द हो जाते हैं। प्रवाहिका(डिसेण्ट्री)और अजीण मे ताजे पत्तो के एक तोला रस को राज सुबह पीने से लाभ होता है। तुलसी की मजरी, सोठ, पिप्पली, मुनक्का, लौग, ताम्बूल पत्तो के डण्ठल, दालचीनी तथा खजूर प्रत्येक एक सौ मिलीग्राम और लोध पचास मिलीग्राम लेकर काढा बना लें। बार-बार प्यास लगना, खाने-पीने की अनिच्छा और अम्लता बढ जाने के कारण आमाशय तथा अन्न-प्रणाली की जलन मे पिलाने से यह तीनो दोषा को शान्त करता है। पेट की पीडा मे तुलसी तथा अदरक का रस सम भाग लेकर, छोटा चम्मच भर दो-तीन बार तक थोसा-थोसा पिला देते हैं।

तुलसी के ग्यारह पत्तो को एक सौ मिलीग्राम वायविडंग के साथ रगडकर दो गोलिया बना लें। सुबह शाम ताजे पानी के साथ एक गोली सात दिन तक सेवन करने से पेट के कीडे मर जाते हैं।

दोपहर के भोजन के बाद या किसी दूसरे समय तुलसी के चार-पाच पत्ते प्रतिदिन चबाकर रस अन्दर लेना मन्दाग्नि, अरुचि, वमन और कृमियो के लिए लाभकारी होता है। इससे मुख का बिगडा हुआ स्वाद ठीक होता है, मुख की दुगन्ध दूर होती है, श्वास स्वच्छ होता है और पाचन-संस्थान ठीक काम करता है। सनतकुमार की सम्मति मे भी भोजन के बाद मुख की शुद्धि के

लिए कुछ पत्ते चबा लेने चाहिए। जिन्हे पान चबाने की आदत है, वे भोजन के बाद तुलसीदल खाना आरम्भ करें, तो इससे उन्हे बहुत लाभ होगा। मसूडो और दातो को खराब करने के पान के दुर्गुण से वे बचे रहेंगे। गावो मे चूकि सब जगह पान सुलभ नही होता, इसलिए जो दवाए ताम्बूल-स्वरस के अनुपान से देनी होती ह, उन्हे देहाती वैद्य तुलसीरस से अनुपान से दे दिया करते है। तुलसी के पत्ते पान का प्रतिनिधि द्रव्य बन सकते हैं। पान की तरह इन पर भी कत्था लगाकर सुपारी के साथ चबाने की आदत लका मे देखी जाती है।

जुकाम और नाक के रोग

सिर का भारीपन, सिर दद, आधासीसी, मृगी तथा बेहोशी मे, जुकाम मे, नाक की गन्ध लेने की शक्ति के नष्ट हो जाने मे और नाक के कीडो मे तुलसी सिर मे सचित दोषो को निकालने के लिए दी जाती है। ताजे पत्तो के रस को नाक मे डालने से नाक के कीडे मर जाते है और नाक से दुगन्ध आनी बन्द हो जाती है। सूखी पत्तियों को पीसकर नस्वार की तरह सूघने से नाक मे बहुत ज्यादा गन्दगी का सदैव बहते रहना रुक जाता हैं। यह नासाकृमियो को भी मारता है। बगाली इस नस्वार को जुकाम मे बहुत बरतते है। नाक के रोगो की चिकित्सा मे चक्रपाणि ने जिन विभिन्न पकार के तेलो का प्रयोग किया है, उनमे तुलसी भी पडती है। ये तेल नाक की दुर्गन्ध को हटाते है। तुलसी के पत्ते, कटेली की जड, दन्तीमूल, बच, सोहाजने के बीज, पिप्पली, सधानमक, काली मिर्च और सोठ से विधिपूर्वक एक तेल बनाया जाता है। जुकाम मे और दुगन्धित नाक

मे इसकी कुछ बूदे नथुनो मे डालते हैं। तुलसी के रस को वासे के रस मे मिलाकर श्लैष्मिक जकाम मे देते हैं।

सर्दियो मे ठण्ड खा जाने से जब नाक और श्वासप्रणालियो की श्लैष्मिक स्तरो मे कफ का प्रकोप हो गया हो और परिणामत जुकाम, छीके, सिरदर्द और ज्वर हो तो पत्तो के रस को शहद के साथ देते हैं। रोग के प्रारम्भ मे ही तुलसी का प्रयोग शुरू कर दिया जाय, तो यह नाक की श्लैष्मिक झिल्ली से शाथ और सक्रमण को आगे नही बढने देती, जिससे सास की नलिया और फेफड़े ठण्ड लगने से बच जाते है। इन अवस्थाओ मे वैद्य इसका एक सरल योग वरतते हैं जो इस प्रकार तैयार किया जाता है। नीरोग साफ कालीमिर्चो के कपडछन चूर्ण को तुलसी के हरे पत्तो के स्वरस की भावनाए दे देकर छाया मे सुखाते जाय। इक्कीस भावनाए देने के बाद बने चूर्ण को चार से छ रत्ती तक शहद के साथ चाटते है या गरम पानी से फकी देते है।

श्वास-सस्थान के रोग

कफ-निस्सारक गुण के कारण इसे कफप्रकोपजन्य अनेक अवस्थाओ मे और श्वास सस्थान के रोगा मे प्रयोग करते हैं। शहद, अदरक और प्याज के रस के साथ इसके पत्तो का रस उत्तम कफ-निस्सारक औषधि वन जाती है और खासी, जुकाम तथा श्वास-प्रणाली की शोथ मे दी जाती है। तुलसी की मजरी, सोठ और प्याज को एक जगह कूटकर और शहद मिलाकर चटाने से सूखी खासी और बच्चा के दमे मे लाभ होता है। खासी मे और गले पड जाने मे हरे पत्तो को सेककर नमक के साथ चबा जाते हैं। खासी मे बलगम आता हो, तो चरक के अनुसार शहद

के साथ काली तुलसी का रस मिलाकर चटाते है। तुलसी की मजरियो मे थोडा घी मिलाकर निर्धूम अगारो पर रखें और उठते हुए धुए को खासी के रोगी को पिलावें । ऊपर से दूध पीने को द। तुलसी बीज, गिलोय, सोठ और कटेली की जड को समान भाग मे लेकर बनाये चूण को दो सौ मिलीग्राम तक दिन मे दो-तीन बार खासी और छाती के विकारो मे खिलाते है। सूखे पौधे के एक तोला यवकुट को दस ताले पानी मे काढकर जुकाम और खासी मे पिलाते है। लका मे भी खासी और जुकाम के काढो मे पौधे को डालते हे। पोखर मूल आदि कासहर द्रव्यो के साथ मिलाकर तुलसी स्वरभेद खासी, दमा और पसलियो के दद मे दी जाती है। निमोनिया मे हरे पत्तो के साथ काली मिचको पीसकर निकाले रस को पिलाते है। दमेमे तुलसी का प्रयोग होता है। दमे को दूर करने वाली दस औषधियो मे चरक ने इसे गिनाया है।

देशी चाय

छाया मे सुखाये हुए तुलसी के पत्ते दो किलो आठ सौ अस्सी ग्राम, दाल चीनी आधा किलो, तेजपत्र आठ सौ अस्सी ग्राम, सौंफ एक किलो सात सौ साठ ग्राम, इलायची आठ सौ अस्सी ग्राम, अगियाधास दो किलो छह सौ चालीस ग्राम, वनफशा दो सौ पचास ग्राम, ब्राह्मी बूटी आठ सौ अस्सी ग्राम और लाल-चन्दन एक किलो सात सौ साठ ग्राम।

गण्डासे से काटकर इनके जौ के बराबर छोटे-छोटे टुकडे कर लें।

तैयार करने की विधि—एक सेर स्वच्छ उबलते पानी

मे एक तोला डालकर उतार लें। जरा सीझने दें, फिर छानकर इच्छानुसार दूध और मीठा डालकर पियें।

विविध प्रकार की चाय दिल और दिमाग को कमजोर करती है, ज्ञानवाही तन्तुओ को निबल बनाती है और रक्तवाहिनो की दीवारो को कठोर बना देती है। परिणाम यह होता है कि समय से पूव ही बुढापे के चिह्न प्रकट होने लगते हैं। यह सुगन्धित और ताजगी देने वाला पेय इन सबसे बचाता है और सच्ची स्फूर्ति तथा आनन्द प्रदान करता है।

आय-सस्कृति के प्राचीन केन्द्र गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय हरिद्वार, मे जब चाय पीने की आदत वाले अतिथि आया करते थे, तो कुलपति स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी उन्हे तुलसी के पत्तो से बनी चाय पीने को दिया करते थे। भारत के भूतपूर्व वायसराय लॉड चेम्सफोर्ड और सयुक्त प्रात के सेवामुक्त गवनर लॉड मेस्टन तथा उस समय के अनेक अग्रेज कमिश्नरो के आतिथ्य मे तुलसी की चाय ही दी जाती रही है। जलपान के समय उन अभ्यागतो मे यह बातचीत का एक मनोरजक विषय रही है।

जो लोग चाय पीने वाले है, वे इसका सेवन करके चाय पीना छोड देते है। जो लोग बहुत तेज चाय पिया करते हैं, परिमाण मे भी ज्यादा पीते हैं और दीघ काल तक पीते रहने के कारण इस नशे के आदी हो गये है, उनसे एकदम चाय छुडाना बहुधा कठिन होता है। ऐसे रोगियो से इस नशीले पेय को छुडाने मे चिकित्सक को विशेष प्रयत्नशील होना पडता है। चिकित्सक को इस बात पर आग्रह नही करना चाहिए कि वह पहले दिन से ही चाय का सवथा परित्याग कर दे।

एक समय रोगी जितनी चाय पीता है, उसमे सूखी चाय कितनी डाली जाती है—इस बात को मालूम कर लेना चाहिए। पहले दिन इस चाय के परिमाण को थोडा कम करके और कम की गई चाय के बराबर तुलसी वाली देसी चाय मिलाकर चाय तैयार करावे। रोगी को यह अखरेगी नही और वह अनुभव कर रहा होगा कि जैसे वह इसमे उतना ही मजा और नशा ले रहा है। धीरे-धीरे देसी चाय का परिमाण बढाते जाइये और चाय को कम करते जाइये। इस तरह अन्त मे एक दिन देसी चाय पर ही आ जाय। जुकाम, खासी, कफ, गले के रोग तथा सब प्रकार के ज्वरो मे इसे पीने को दिया जाता है।

गुरुकुल कागडी की सूझ के कारण तुलसी की इस चाय को बहुत-सी आयुर्वेदिक फार्मेसिया बडे पैमानेपर बनाकर बेचरही है। उनमे मिलाये जाने वाले घटकोमे और उनके अनुपातमे बहुत विविधता है। इनकी सुगध और उन्नति की बहुत गुजाइश है। जिन सस्थाओ या फार्मेसियो के साथ रासायनिक प्रयोगशालाए विद्यमान है, उन्हे इस सम्बन्ध मे खोजें करनी चाहिए। तुलसी के हरे पत्तो को तोडने के समय, उन्हे सुखाने के तरीके और उन्हे तथा अन्य घटको को 'तुलसी चाय' मे एक नियत अनुपात में मिलाने से पेय की सुगध और स्वाद मे आने वाले परिवर्तनों का सूक्ष्मता से अध्ययन करते हुए एक ऐसे स्वादिष्ट पेय का निर्माण करना चाहिए, जो सवसाधारण मे बाजारू चाय के मुकाबले मे अधिक लोकप्रिय हो सके। देश के सम्पन्न सगठन वैज्ञानिक आधार पर अन्वेषण करके एक ऐसा पेय निर्माण कर सकते है, जो समस्त भारत ही नही, विदेशो मे भी अपना स्थान बना ले।

मस्तिष्क और हृदय

तुलसी के पाच-सात पत्तो को तीन-चार कालीमिर्चों के साथ सरदाई की तरह रगडकर एक गिलास बना लें। सुबह खाली पेट इक्कीस दिन बराबर पिया जाय तो यह पेय दिमाग की गर्मी को दूर करता है और दिमाग को ताकत देता है। हृदय-उत्तेजक होने से यह दिल को बलवान् बनाता है। सरदियो मे यह पेय अधिक पसन्द किया जाता है। अमीर लोग इसमे बादाम आदि मिलाकर सरदाई घोट लेते है।

भरतपुर के एक वैद्य ने एक लेख मे लिखा था कि उनके पास तुलसी-कल्प' नामक एक हस्तलिखित प्राचीन पुस्तक है। उसमे लिखा है "ब्राह्म मुहूर्त्त मे उठकर स्नानादि से निवृत्त होने के बाद प्रतिदिन तुलसी के पाच पत्ते एक घूट जल से निगल जाने वाले का बल और तेज बढता है। उसकी मेधा और स्मरण शक्ति तीव्र हो जाती है।"

चरक और गोविन्ददास के महानील तेल मे तुलसी पत्ते डाले जाते हैं। पीने से, सिर पर मलने से और नाक में डालने से यह तेल मस्तिष्क तथा सिर के सब रोगो को दूर करता है, बालो को सफेद होने से रोकता है, आखो की ज्योति को बढाता है और दीर्घ आयु प्रदान करता है।

हरे पत्ते को पीसकर मृगी के रोगी के शरीर पर रोज उबटन करना चाहिए। पत्तो के रस मे थोडा नमक मिलाकर नाक मे डालने से मूर्च्छा और बेहोशी तत्काल दूर हो जाती है।

शोधक रसायन

तुलसी देखने, विचारने, सूघने बोलने स्वाद लेने आदि

सब शक्तियो को स्थिर रखने वाली है। मुख, आख, कान, गला, कधे, हृदय, नाभि, कमर, जाघे, घुटने, पैर आदि सब अगो को सुरक्षित रखने वाली है। तुलसी का सेवन शरीर मे सचित मलो को निकालता है, जिससे प्रत्येक अवयव पवित्र हो जाता है। मन, वाणी और शरीर शुद्ध हो जाते है। तुलसी की मिट्टी को या तुलसी की लकडी को चदन की तरह घिसकर माथे पर सदा लेप करने से वश-परम्परा मे चलने वाले रोगो को रोकने मे सहायता मिलती है। तुलसी सब रोगो से बचाकर मन और शरीर को पवित्र करती है। रोज तुलसी के पत्ते खाने वाला सदा स्वस्थ और परम प्रसन्न रहता है। दूषित जल को शुद्ध करने के लिए तुलसी के पत्ते पानी मे डाल देते है।

वातनाडियो के रोग

वातनाडियो के विकारो मे जैसे गृध्रसी आदि नाडियो की शूल और शोथ मे पत्तो के पानी मे बनाये कषाय से रोगग्रस्त वातनाडी को पसीना देते है। इस क्रिया को 'नाडी स्वेद' कहते है। मॉरीशस द्वीप मे इसके गरम काढे से आमवात और पक्षाघात मे आक्रान्त भागो को धोया जाता है और भाप दी जाती है। उरुस्तम्भ (टागो के लकवे) मे पचाग के गरम क्वाथ से रुग्ण भाग को धोते हैं और बीजो को पीसकर उसपर लेप करते है। पत्तो को दही और सेधा नमक के साथ पीसकर लेप करने से भी उरुस्तम्भ ठीक हो जाता है। 'वैद्य जीवन' मे लोलिम्बराज बताते हैं कि पत्तो के रस को काली मिर्च के चूर्ण और घी मे मिलाकर बनाये योग लघु राजमृगाक को प्रबल वातव्याधि मे भी देने से रोग शान्त हो जाता है।

प्रजनन-संस्थान रोग

तुलसी पोषक और वाजीकरण गुण के लिए उपयोग की जाती है। यह वीर्य को गाढा करती है और पुंसत्वशक्ति को बढाती है। बीज लेसदार और लेपक होते हैं। जननेन्द्रिय तथा मूत्रसंस्थान के विकारो मे दिये जाते हैं। नपुंसकता मे दी जाने वाली अनेक दवाओ मे पीसे हुए बीजो को डालते हैं। ये वीर्यवर्द्धक है और वीर्य की तरलता को दूर करते है। तुलसी के बीज पचास ग्राम, पोस्त के डोडे चालीस ग्राम, गोखरू पचास ग्राम, कौच के बीज तीस ग्राम, मुसली चालीस ग्राम और मिश्री साठ ग्राम को कूटकर कपडछन कर ले। एक ग्राम की मात्रा मे यह चूर्ण वीर्य की निर्बलता मे दिया जाता है। स्तम्भन के लिए लोग बीजो के चूर्ण या जड के चूर्ण को पान मे रखकर सेवन किया करते है। इससे बल की वृद्धि होती है। तुलसी के बीजो या जड को चूर्ण करके समान भाग पुराने गुड मे मिलाकर डेढ सौ मिलीग्राम तक सुबह शाम गाय के दूध के साथ लिया जाय तो वीर्य के विकार दूर हो जाते है। वीर्य को पुष्टि देकर पुंसत्वशक्ति बढाने वाली दवाओ को ढूढने वाले युवको और अधेडो को इसके पाच-छह सप्ताह के सेवन से बहुत लाभ होता है। स्वप्नदोष को रोकने के लिए इसकी जड को घोटकर पिलाया जाता है। थोडी-सी इलायची और दस ग्राम सालममिश्री के चूर्ण के साथ पत्तो का काढा प्रतिदिन लिया जाय, तो यह एक पोषक वल्य पेय का काम करता है।

स्त्रियो के रोग

बीजो का चूर्ण मासिक धर्म को जारी करने के योगो मे

डाला जाता है। पत्तो के काढे को एक प्याली हर महीने रजो-दर्शन के बाद ती‍न दिन तक पी ली जाया करे तो गर्भ ठहरने की सम्भावनाएं कम रह जाती है। देहातो मे स्त्रिया गर्भनिरोध के लिए इसे इस्तेमाल करती हैं।

तुलसी के बीज और नई आम्बाहल्दी को समभाग मे पीस-कर योनि मे छिडकने से योनिभ्रश ठीक हो जाता है। गर्भावस्था मे पेट की दीवार के खिच जाने से त्वचा की निचली स्तर फट जाती है, जिससे पेट पर दरारें-सी दिखाई देती है। ये दरारें उर स्थल के नीचे पड जाती है। इन दरारो को किक्किम कहते है। इनमे खुजली हुआ करती है। तुलसी के कल्प को इनपर मलकर इसकी चिकित्सा की जाती है। इससे खुजली शान्त हो जाती है।

मनुष्यो के लिए अमृततुल्य यह औषधि पुत्र चाहने वालो की इच्छा पूर्ण करती है। जिस स्त्री के बच्चे मर जाते हो, रोज सेवन कराने से यह उसके उत्पादक अगो को शुद्ध कर देती है और तब वह दीर्घजीवी नीरोग बच्चे पैदा करने लगती है। बाझ औरत को एक साल तक खिलाई जाय तो उसे गर्भ ठहर जाता है। लडकी चाहने वालो के घर मे लडकी पैदा हो सकती है। तुलसी के प्रयोग से स्त्री को वश मे करना भी 'ब्रह्माण्ड पुराण' मे लिखा है। इसमे से जो प्रिय गध निकलती है, उसे स्त्रिया बहुत पसन्द करती हैं। आजकल का युवक अपनी प्रेयसी को प्रसन्न करने के लिए तरह-तरह के सेण्टा के उपहार देता है, परन्तु एक समय वह था कि जब रूठी हुई सुदरिया को तुलसी सुघाकर ही मना लिया जाता था। तुलसी गध का प्रभाव स्त्रियो पर तो आज भी परफ्युमरी मे बहुत पसन्द किया जा रहा है।

बच्चों के रोग

पत्तो का फाण्ट दीपक और पाचक के रूप मे बच्चो के आमाशयिक रोगो मे और जिगर के विकारो मे बहुत प्रयोग किया जाता है। बच्चो के उदरशूल मे पत्तो का ताजा रस अकेला या एक-दो मि०ग्रा० सोठ के साथ दिया जाता है। बीजो को पीसकर बच्चो की उलटियो और दस्तो मे गौ के दूध मे घोलकर पिला देते हैं। एक साल के बच्चे के लिए बीजो की मात्रा एक से डेढ मि०ग्रा० है और इस मात्रा मे ये दिन मे तीन या चार बार तक दिये जा सकते है। पत्तो के रस मे शहद मिलाकर चटाने से दस्तो और खासी मे लाभ होता है। सर्दियो मे इसे कोसा करके देना चाहिए। पत्तो के रस का शबत बनाकर छोटा चम्मच भर देने से बच्चो की सरदी, जुकाम, खासी, उल्टी दस्त, पेट का फूलना आदि रोग दूर हो जाते हैं। सुस्त और फिसडडी बच्चा मे डॉक्टर वेल्ज ने जब बहुत-सी ऐलोपथिक दवाओ को निष्फल देखा, तो उसने तुलसी के काढे का उपयोग किया और इसे लाभदायक पाया।

मलेरिया से बचने का उपाय

तुलसी मे जो विशिष्ट गध होती है, उसके कारण जहा यह पौधा उगता है, मच्छर और कीडे उस स्थान के पास नही आते। यहा तक कहा जाता है कि साप भी इसके पास ठहर नही सकते। घरो मे या घरो के आसपास और गृह-उद्यान मे इसके पौधे लगाने से मलेरिया और मच्छरो का घर मे प्रवेश कम होता है और मलेरिया से बचने मे सहायता मिलती है। कुछ पाश्चात्य डाक्टरो के मत मे भी मलेरिया से लडने के लिए यह सस्ता

हथियार है। सर जॉर्ज वुड ने १९०५ मे 'लदन टाइम्स' मे लिखा था कि बम्बई मे जब विक्टोरिया गार्डन और म्यूजियम की इमारत बन रही थी, तो उनपर काम करने वाले लोगो मे मलेरिया बुरी तरह फैल गया। एक हिन्दू मैनेजर की सलाह से उस समय सब बगीचो के चारो ओर पवित्र तुलसी के पौधे लगा दिये गए, जिससे मच्छरो की बाढ एकदम रुक गई और बगीचो मे रहने वाले मालियो तथा अस्थायी रूप से रहने वाले राज-मिस्त्रियो मे फैला हुआ मलेरिया बुखार सवथा निकल गया। इससे पहले सारे बम्बई मे ये बगीचे सबसे अधिक मलेरिया से आक्रान्त रहते थे। लदन की इम्पीरियल इस्टिट्यूट के डाक्टर मोलिंडग और डाक्टर पेली ने यह बतलाया है कि तुलसी के अदर एक ऐसा उडनशील तेल है, जो हवा मे मिलकर ज्वर को उत्पन्न करने वाले सब जन्तुओ को नष्ट कर देता है। अगस्त्य सहिता के अनुसार तुलसी वन के चारो ओर तीन किलोमीटर तक की वायु को इसकी सुगध शुद्ध कर देती है।

पुराणो का यह कथन सर्वथा सत्य है कि जिस घर के सामने या आगन मे तुलसी का बाग लगा रहता है, वह घर तीर्थ के समान पवित्र रहता है और उस घर मे यम के दूत (मलेरिया के मच्छर अथवा रोगोत्पादक कीटाणु) तथा दूसरी प्राणनाशक व्याधिया नही घुसने पाती और वहा के रहने वाले अकाल मृत्यु के पजे से बचे रहते है। ०
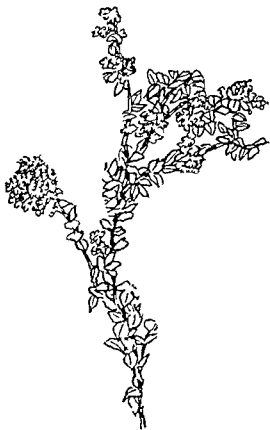
बदरीनाथ का प्रसाद

हिम तुलसी

ऋषियो की तपोभूमि हेमकुण्ड जाते हुए घघरिया के आस-पास, बदरीनाथ के नीचे हनुमान् चट्टी मे गोणा ताल के पर्वतो पर मैंने हिम तुलसी का पौधा प्रचुर परिमाण मे उगा हुआ देखा है। हिमालय के कोष्ण कटिबन्धो मे कश्मीर से सिक्किम तक समुद्रतल मे २,१३४ मीटर की ऊचाई से लेकर ३,६५८ मीटर की ऊचाई तक हिम तुलसी मिल जाती है।

तुलसी के सदृश पत्तो वाला तथा प्राय वैसी ही सुरभि वाला यह छोटा पौधा है। जून मे जब मैंने देखा था तो पौधे ३०-४५ सेण्टीमीटर ऊचे थे। उनपर अभी पुष्पमजरी नही निकली थी।

पर्वतीय लोगो मे यह तुलसी मैदानो की तुलसी (ओसिमम साक्टुमलिन) के समान ही पवित्र मानी जाती है। वे इसे पूजा-पाठा मे वरतते है। वदरीनाथ के मन्दिर मे लगभग तीन-चार मास इसी तुलसी के द्वारा देवता का अर्चन किया जाता है। वदरीनाथ के आस-पास के पर्वतो मे यह उपलब्ध नही होती। इसलिए प्रतिदिन नीचे हनुमान चट्टी से बडे परिमाण मे मगाई जाती है। मदिर के अहाते मे चार-पाच पुजारी हिम तुलसी के छोटे-छोटे खण्डो को बाधकर दिन भर मालाए बनाने मे व्यस्त रहते है। कुछ बालक इन्हे थालो मे मजाकर यात्रियो के पास धर्मशालाओ मे ले जाते है। देवता को अर्पण करने के अतिरिक्त भक्त लोग तथा श्रद्धालु देविया भी बदरी विशाल के प्रसाद के रूप मे हिम तुलसी की इन मालाओ को अपने साथ दूर-दूर तक ले जाते है।

विविध भाषाओं में नाम

गढवाली मे इसे 'तुलसी' और कुमाऊनी में 'वन तुलसी' कहते है। सस्कृत के प्राचीन ग्रथों मे यह वर्णित है भी या नही, और यदि वर्णित है तो किस नाम से, यह कहना कठिन है। महर्षि चरक ने तुलसी की सुमुख, कुटेरक, अर्जक, गण्डीर, कालमालक, तुलसी, पर्णास, क्षवक और फणिज्झक—ये नौ अलग-अलग जातिया लिखी है। सभवत इनमे ही किसी में हिमालय की इस तुलसी का अन्तर्भाव किया जा सके। हिम प्रदेशों मे पैदा होने से सस्कृत मे हम इसे 'हिम तुलसी' नाम देना उपयुक्त समझते है। फारसी मे इसे मिजजोश' कहते है। इसका औद्भिदी नाम 'ओरिगानुम बल्गारेलिने' है। यह लामिआसी कुल का पौधा है।

अनेक अन्वेषको ने पौधे का विश्लेपण किया है। पौधे में से एक उत्पत तेल (एसेन्शियल ऑयल) निकलता है। जापान के केमिकल सोसाइटी के जनल (१९३६, पृष्ठ ५७४) के प्रतिवेदन के अनुसार इस उत्पत तेल मे थाईमोता पचास प्रतिशत पाया जाता है। क्षुप मे उत्पत तेल का कुल परिमाण ० ४५ से ० ५२५ प्रतिशत तक प्राप्त होता है।

चिकित्सा मे उपयोग

सरदी के कारण यदि मासिक स्राव अवरुद्ध हो गया हो, तो क्षुप का गरम फाण्ट पिलाने स प्रवाह जारी हो जाता है।

हिम तुलसी का उत्पत तेल सौरभिक, उद्दीपक, बल्य चमरत्कर (रुबिफेशियेन्ट) है।

उदरशूल, अतिसार, अपचन आदि पेट के रोगो में दीपन-

पाचन के लिए हिम तुलसी के पत्ते, पचाग या उत्पत तेल प्रयोग किया जाता है।

योषापस्मार (हिस्टीरिया) मे हिम तुलसी के पत्तो को मसलकर सुघाते हैं।

उत्पत तेल को लिनिमेण्ट मे भी प्रयोग करते है। आमवातिक वेदनाओ मे आक्रान्त भाग पर हिम तुलसी के तेल को मलते हैं। मालिश किये जाने वाले किसी भी तेल मे उत्पत तेल की कुछ बूदें मिलाकर मालिश करना चाहिए। सत्तर ग्राम सादे तेल मे एक सौ मिलीग्राम हिम तुलसी उत्पत तेल मिलाना ठीक रहेगा। उत्पत तेल सुलभ न हो, तो हिम तुलसी के पत्तो और मजरियो को पकाकर तेल बना लेना चाहिए। इसकी विधि यह है—हिम तुलसी की पत्तियो और मजरियो को कूटकर चार किलो रस निकाल ले। दो किलो तिल के तेल मे डालकर मन्द अग्नि पर पका ले।

दात और कान के दद मे उत्पत तेल को अथवा उपर्युक्त सिद्ध तेल को रुई के फोये मे तर करके रखते है। ०

शिवजी का शृंगार

रुद्राक्ष

रुद्राक्ष को सस्कृत मे हराक्ष, शिवाक्ष, शवाक्ष, नीलकण्ठाक्ष आदि नामो से जानते है। इन नामो का अर्थ है—शिवजी की आख। पुराणो मे रुद्राक्ष की उत्पत्ति शिवजी की आख से मानी गई है।

जावा की भापा जावानी मे इसे 'जनत्री' कहते है।

आधुनिक वनस्पति-शास्त्र के विद्वान इस पौधे को इलियोकार्पस गण मे रखते है। इस गण मे अनेक जातियो के वृक्ष है, जो रुद्राक्ष की गुठली जैसे फल धारण करते है। कुछ वृक्ष ये है—इलियोकार्पस रौबस्टस। यह विशाल वृक्ष है। एक वृक्ष इलियोकापस टुबर्कुलेटस है। गुठली पर उभार स्पष्ट होने से इस जाति को टुबर्कुलेटस कहते है। रुद्राक्ष पैदा करने वाला एक अन्य वृक्ष है—इलियोकार्पस गेनिट्रस।

हमारे देश मे व्यापारिक रुद्राक्ष जावा तथा नेपाल से आता है। बादुग शहर की सडको पर जालान नकुला (नकुल पथ) और जालान सहदेवा (सहदेव पथ) तथा जालान राथा (जन पथ) पर रुद्राक्ष के वृक्ष रोपे हुए है। एक छोटे पवतीय शहर वोनोसोवो (वन शोभा) मे भी रुद्राक्ष के पेड हैं। पूव जावा के पहाडी इलाको मे, चेलाचेप मे और गुनुगसारी मे ये जगली वृक्ष है। समुद्र तट से ९१४ मीटर की ऊचाई तक इसके पेड मिल जाते है। ऊपर वर्मा मे लाशियो के आसपास भी रुद्राक्ष मिलता है।

नेपाल मे रुद्राक्ष की उत्पत्ति भोजपुर, चैनपुर, दिगला तथा वाना मे है। मझवा तथा तुर्गलिग और कुलग मे इसकी पैदावार अधिक ह। पूर्वीय नेपाल मे मोरग और राने छाप मे इसके जगल है।

देहरादून और हरिद्वार मे कुल मिलाकर पन्द्रह-बीस वृक्ष होंगे। व्यापारियो का कथन है कि यहा की भूमि मे गुठली लबी हो जाती हैं। लम्बी गुठली को व्यापार मे माग नही है। गोल रुद्राक्ष को पसन्द किया जाता है। इसलिए इन स्थानो मे उगे हुए ये वृक्ष फलो की दृष्टि से विशेप महत्व के नही है।

महाकवि कालिदास (पहली शती ईस्वी पूर्व) की कृतियो मे रुद्राक्ष का वणन अनेक स्थलो पर मिलता है। परशुराम अपने दाहिने कान के ऊपर रुद्राक्ष क इक्कीस दानो वाली माला धारण करते थे, क्योकि उन्होने क्षत्रियो का इक्कीस बार सहार किया था। शिवजी के कान पर रुद्राक्ष की दुहरी माला पडी हुई थी। पार्वती ने तपस्या करते हुए अपने हाथ मे रुद्राक्ष की माला को धारण किया हुआ था। शिवजी ब्रह्मचारी का रूप धरकर उनके पास गये और उन्होने उनसे तप करने का कारण पूछा था। तब भी पार्वती रुद्राक्ष की माला को हाथ के अग्रभाग मे लेती हुई बातें करने लगी थी। चन्द्रापीड राजा ने दिग्विजय यात्रा मे एक दिन शिकार पर जाते हुए अच्छोद सरोवर के पास शिव मन्दिर मे महाश्वेता को पूजा करते देखा था। महाश्वेता के गले मे रुद्राक्ष की माला अधिष्ठित थी। भवभूति (७वी ८वी शती) ने लव का जो सुन्दर चित्र खींचा है, उसमे ब्रह्मचारी बालक लव के एक हाथ मे धनुप है, कलाई पर रुद्राक्ष की माला लपेट रखी ह, दूसरे हाथ मे पीपल का दण्ड पकड रखा है।

भवभूति(७वी-८वी शती)ने 'महावीर चरित्र' मे भृगुनन्दन परशुराम के उग्र तथा शान्त वेश का वणन करते हुए बताया है कि उनके हाथ मे यद्यपि बाण पकडा हुआ है, जो उनकी

उग्रता को प्रकट करता है, परन्तु हाथ पर लिपटी रुद्राक्ष की माला शान्ति की द्योतक है। त्रिविक्रम भट्ट (दसवीं शती पूर्वार्द्ध) ने अपने काव्य 'नलचम्पू' के आरम्भ मे ब्राह्मण-प्रशसा करते हुए रुद्राक्ष माला का वर्णन किया है। उस समय ब्राह्मण लोग रुद्राक्ष की माला के द्वारा प्रभु का नाम जपते थे। सूर्य मण्डल से उतरे हुए दमनक मुनि के साथ जो मुनि थे, उन्होने रुद्राक्ष की मालाए धारण कर रखी थी। दमनक मुनि ने भी बाए हाथ मे रुद्राक्ष माला पहनी हुई थी। त्रिविक्रम भट्ट ने मुनि के हाथ की खिले हुए कमल से तथा रुद्राक्ष के मनको की भ्रमर से उपमा दी है। सम्भर (१२वी शती) ने काव्यलिंग अलकार के उदाहरण मे रुद्राक्ष माला का वर्णन इस प्रकार किया है— "अरे भस्म के लेप ! अरी रुद्राक्ष की माला ! अरी शिव मन्दिर की सुन्दर सोपान पक्तिया ! अब मैं कहा और तुम कहा ! जाओ, तुम्हारा कल्याण हो !"

रुद्राक्ष का वृक्ष बडा होता है। शाखाए लटकती हुई होती है। ग्रीष्मारम्भ मे जब नए पत्ते निकल रहे होते है, तो दूर से अनजान आदमी को यह पीपल वृक्ष का भ्रम पैदा कर सकता है।

शाखाओ के सिरो पर फूल की मजरी प्रकट होती है। फूल मैले-से रग के होने से विशेष आकर्षक नही होते। जावा मे यह वृक्ष जून मे फलता है। फूलो के गिरने के बाद रुद्राक्ष के फल लगते है। फल गूदेदार होते है। इनका रग हरा होता है। पकने पर नीला पड जाता है। शाखाओ के सिरो पर पाच-छ या अधिक फल एक साथ लगे रहते है। कुछ जातियो मे फल लम्बोतरे तथा कुछ मे गोल होते है। हरिद्वार मे दो पेड हैं। इनके फल गोल हैं। इनके ऊपर का गूदा स्वाद मे कडवा है।

देहरादून की वन-अनुसंधानशाला की वनस्पति वाटिका मे रुद्राक्ष का जो पेड है, उसके कच्चे फलो का गूदा खट्टा है। बच्चे उसे स्वाद से खाते हैं और वह चटनी बनाने के काम भी आता है।

पके फल बेर जैसे मृदु गूदेदार हो जाते है। अगुलियो के बीच मे मसलने से गुठली से गूदा अलग हो जाता है। पके फल स्वत गिर पडते हैं। इनके अन्दर की गुठली कठोर होती है। गूदे को उतारकर गुठली को इकट्ठा कर लिया जाता है।

बारिश का दाना की मोटाई पर प्रभाव पडता है। पूरी बारिश मिलने पर दाने फूलकर मोटे हो जाते हैं। कम बारिश वाले साल मे दाने छोटे रह जाते हैं।

एक रेखा से लेकर चौबीस रेखाओ तक का रुद्राक्ष मिलता है। रेखाओ के बीच मे जो उभार होते है, उन्हे 'मुख' कहते है। इसी से इन्हे 'एकमुखी', 'पचमुखी' आदि नाम दे देते हैं। औद्-भिदी की दृष्टि से ये मुख गुठली की फाकें हैं। पचमुखी रुद्राक्ष अधिक मिलता है। फेरने की माला प्राय इसी से बनती है। एक माला मे एक सौ आठ मनके रहते है।

दाना जितना छोटा होता है, उतना ही अधिक कीमती होता है। एक वृक्ष पर यदि पचास हजार दाने लगे है तो उसमे छोटे दाने कोई दो सौ ही लगेंगे। इसलिए कम मिलने के कारण इनका दाम अधिक है। माला फेरने वाले छोटे दानो को लोग अधिक पसन्द करते हैं। छोटा दाना जावा से आता है।

नेपाल मे बडा दाना पैदा होता है। यह शरीर पर धारण करने के काम आता है। इसका मूल्य कम होता है।

बेर की गुठलिया रुद्राक्ष के दानो से मिलती-जुलती है। बेर की गुठलियो की मालाए भी बाजार मे बिकती है। हरिद्वार मे ये

पचास पैसे मे मिल जाती है। रुद्राक्ष के मनको मे इसकी मिलावट करने के बहुत कम उदाहरण मिलते है। दोनो की भेदक पहचान यह है कि रुद्राक्ष के छोटे-से-छोटे मनके के ऊपर भी फाको की रेखाए पडी होगी, जबकि बेर की गुठली पर फाकें नही होगी।

दूसरे महायुद्ध से पूर्व जूनागढ के कुछ बोहरे परिवार रुद्राक्ष का आयात करते थे। उनके आदमी जावा से भेजते थे। इसके आयात पर कोई प्रतिबन्ध नही था। कलकत्ता के बन्दरगाह पर यह उतरता था। मुख्य मण्डी कलकत्ता ही थी। यही से यह भारत मे सब जगह भेजा जाता था। उस समय बोरियो मे आता था। एक बार मे पाच सौ बोरियो तक आयात होता था। उन दिनो एक लाख बारीक दानो का अधिकतम मूल्य सौ, सवा सौ रुपये था। मोटे दाने बोरियो के हिसाब से बिक जाते थे। बीस से तीस रुपये तक एक बोरी बिक जाती थी, जिसमे साठ-सत्तर हजार दाने हो जाते थे। अनुमान है कि उन दिनो प्रति वर्ष बीस-पच्चीस हजार रुपये का रुद्राक्ष जावा से हमारे देश मे आ जाता था।

युद्ध के बाद जूनागढ के बोहरे व्यापारी तथा कलकत्ते के मुसलमान व्यापारी पाकिस्तान चले गए। सरकार ने सभी चीजो के साथ रुद्राक्ष के आयात पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया, जिससे जावा से बहुत कम माल आने लगा।

१९६० मे जावा मे इसका भाव पैसठ रुपये मन के लगभग था। बीमा, भाडा, तटकर आदि अलग था। चालीस प्रतिशत तटकर देना होता था। वहा से बिना छटा माल आता था। भारत मे छटाई की जाती थी। अलग-अलग ग्रेड बनाये जाते

थे। मनको मे छिद्र करने का काम बनारस मे किया जाता था। लोहे के बरमे से छेद करते थे। छेद करने मे बहुत से दाने टूट जाते थे। पाया गया है कि अपरिपक्व दाने ही अधिकतर टूटते है।

नेपाल का रुद्राक्ष नोतनवा, धरान विराटनगर आदि तराई की मण्डियो मे आता है। सर्दियो मे नेपाल से जो मजदूर पैदल भारत मे आते है, वे अपने साथ रुद्राक्ष की बोरिया भी ले आते है। जगलो मे वृक्षो के नीचे पडे दानो को इकट्ठा कर लेते हैं और यह सोचकर ले आते है कि रास्ते का खर्च तो इसे बेचकर वे निकाल लेंगे। नेपाल वाला रुद्राक्ष माल की कमी-बेशी के अनुसार आठ रुपए मन (अडतीस किलोग्राम) से लेकर बीस रुपये मन तक खरीदा जाता है। इस पर नेपाल सरकार की निकासी पाच रुपए मन पडती है। पहले यह चुगी दो रुपए मन थी। एक व्यक्ति प्राय मन भर बोझ अपनी पीठ पर ले आता है।

भारत मे रुद्राक्ष की खपत सबसे अधिक दक्षिण मे है। अनुमान है कि हरिद्वार मे नेपाली मोटे दाने की बीस पच्चीस बोरिया बिक जाती ह। एक बोरी मे लगभग दो मन रुद्राक्ष होता है। एक मन मे लगभग बीस पच्चीस हजार दाने आते होगे।

एकमुखी दाना अत्यन्त दुलभ रुद्राक्ष है। यह भी नेपाल मे मिलता है। इसका दाम श्रद्धालु लोग हजारा रुपए तक दे देते है। ऐसे एक दाने के लिए अस्सी हजार रुपए तक के सौदे सन् १९४६ मे किये गए थे। दो दाने जुडे हुए 'गौरीशकर' कहलाते है। उनका विशेष धार्मिक महत्त्व है। इनके दाने का दाम कम-से-कम दो सौ रुपए होता है। ऐसे जुडे हुए दाने नेपाल के दानो मे ही मिलते है। चौबीसमुखी दाना दस-बारह रुपये प्रति दाने

के हिसाब से बिकता है।

जावा मे जहा यह पैदा होता है, इसके बीजो (रुद्राक्ष) का कोई उपयोग नही है। हा, चीनी लोग इसकी छाल को चिकित्सा के काम लाते है। लकडी भी किसी विशेष उपयोग मे नही आती, सिवा ईंधन के।

भारतीय धर्म तथा संस्कृति मे रुद्राक्ष यद्यपि देर से स्थान पा चुका था, तथापि प्रतीत होता है कि चिकित्सा-जगत मे यह सर्वथा उपेक्षित रहा। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट (८वी शती), धन्वन्तरि (८०० ई० पश्चात्), नरहरि (१२वी शती), भाव मिश्र (१५०० ईस्वी पश्चात्) आदि आयुर्वेद के लेखको ने रुद्राक्ष का वर्णन तक नही किया। अमर सिंह (५००-८०० ई० पश्चात्) ने भी इस पवित्र पौधे का नाम तक नही गिनाया।

शिव-भक्तो में सामान्य रूप से विश्वास किया जाता है कि रुद्राक्ष को धारण करने से रक्त का उच्च चाप नही होता। रुद्राक्ष माला के जप से सब कामो की सिद्धि होती है। अब कहीं-कही आयुर्वेदिक औषधिया बनाने वाले भी रुद्राक्ष की भस्म बनाकर रोगो मे प्रयोग करने लगे है।

आमवात (गठिया) मे फल का उपयोग किया जाता है। टायफायड जैसे दीर्घकालीन ज्वरो मे रुद्राक्ष लाभदायक माना जाता है। सिर के रोगो मे फल का प्रयोग किया जाता है। अपस्मार के दौरो मे फल लाभदायक समझा जाता है। पित्त-विकार, रक्त विकार, रक्तचाप, हैजे के लिए रुद्राक्ष लाभदायक माना जाता है तथा अपचन मे छाल का काढा देते है इस तरह धार्मिक पवित्रता के साथ इसका दवा के रूप मे भी महत्व है।

शिव-गणो का
पहरवा

भोजपत्र

भोजपत्र का वृक्ष बडा होता है और खूब ठण्डी जगह मे भी स्थिर रहता है। इस विशेपता के कारण इसे सस्कृत मे 'भूज' (भु ऊर्ज अस्य, ऊर्ज बल प्राणयो) कहते है। सस्कृत के इस नाम के आधार पर ही लोक मे इसे 'भोज' कहने लगे। अग्रेजी मे इसे बर्च', जमन मे 'बर्चा' या 'बक', लिथुआनियन मे 'बेजस' और स्लावोनियन मे 'ब्रेजा' कहते हैं। ये सब शब्द सस्कृत के भूर्ज शब्द से मिलते है।

इस वृक्ष की त्वचा (चम) लम्बी चादरो मे उतरती है। प्रशस्त डाल (चर्म) के कारण इसे सस्कृत में 'चर्मी' भी कहते है। छाल नरम होती है और आसानी से उतर जाती है, इसलिए इसका एक नाम 'मृदुत्वच' भी है।

अग्रेजी कवियो ने भूर्ज वृक्ष को अतिशय शर्मीला और कान्ता सदृश लिखा है। वे इसे 'जगल की देवी' भी कहते है। घने जगलो में भूज वृक्ष के लम्बे तनो का जब उगते हुए सूर्य की सुनहरी रश्मिया आलिगन करती है, तो सचमुच हिमालय के इस सुन्दर वृक्ष का मादव और लालित्य निखर उठता है। नयी त्वचा की गुलाबी, मृदुता और कमनीयता आधुनिकतम साडी को मात कर रही होती है। इन्हे देखकर ऐसा भ्रम होता है कि सुन्दर परिधानो में सजी हुई पार्वती अपनी सखियो के साथ शिवजी को मिलने गौरी गुरु शैल पर कही जा रही है।

औद्भिदी के आधुनिक विद्वानो ने भोजपत्र को बेटला गण में रखा है। इसकी दो जातिया हिमालय मे अधिक मिलती है। एक का नाम 'बेटुला उटिलिस' ह। औद्भिदी जगत् मे इसका पुराना नाम सस्कृत के शब्द के आधार पर 'बेटुला भोजपत्र'

वनो के साथ के पर्वत हिमाच्छादित थे। हेमकुण्ड (समुद्र तल से लगभग ४,३४३ मीटर ऊचाई पर स्थित) और फूलो की घाटी जाते हुए माग मे पडने वाली हिमानियो (ग्लेशियर) को हमने भूर्ज की सहायता से पार किया था। हमारे पथ-प्रदशक ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए भूज की दो-दो लाठिया काट दी थी, जि हे बफ मे गाड-गाडकर हम वर्फ पर आगे बढ रहे थे। कपडे के मामूली बूट उन हिमानियो को पार करने के लिए अनुपयुक्त थे। इसलिए भोजपत्रो को पैरो और टागो पर मोटी-मोटी तहो मे लपेट कर अच्छी तरह बाध लिया था। भोज-पत्रो को नीचे बिछाकर मोटा गद्दा बना लिया था और उस गद्दे पर सोने मे हमे आराम मिला था। आग सुलगाने के लिए भी भोजपत्र हमारे काम आये थे।

दिग्विजय के लिए रघु जब हिमालय के ऊपर गए थे तो मार्ग मे भोज के सूखे पत्तो मे ममर ध्वनि पैदा करने वाली, खोखले वासो मे शब्द पैदा करने वाली और गगा के जलकणो मे शीतल हवाओ ने उनका स्वागत किया था।

यह वृक्ष (वेटुला उटिलिस) हिमालय के ठण्डे प्रदेशो मे कश्मीर से सिक्किम और भूटान तक के जगलो मे मिलता है। कश्मीर मे समुद्रतल से ३,१३४ मीटर से ३,६५६ मीटर की ऊचाई तक और सिक्किम मे २,७४३ से ४,२६७ मीटर तक यह मिल जाता है।

भोजपत्र की दूसरी जाति वेटला एल्नायडिस कम ऊचे पर्वतो पर भी उग आती है। हिमालय मे रावी से पूव की ओर १,५२४ से ३,०४८ मीटर तक खासिया पहाडी मे ९१४ से १,५२४ मीटर तक और मणिपुर मे इसके जगल हैं।

हिमालय-वासियो के जीवन मे भोजपत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। छातो मे कपडे के स्थान पर वे भोजपत्र लगाते हैं। मकानो की छतो को वे भोजपत्र से पाटते हैं। बिछावन के लिए इसे घरो मे प्रयुक्त करते है। प्राचीनकाल मे तपस्वी लोग इसे वस्त्र के रूप मे प्रयोग करके अपने शरीर की रक्षा करते थे।

पर्वतो पर विशाल शिलाओं के ऊपर मैनसिल का लेप किये हुए, नमेरू फूलो का शृगार किये हुए और भूर्ज वल्कल के कोमल वस्त्रा को धारण किये हुए शिवजी के गणो को कालिदास ने देखा था।

इसकी लकडी मजबूत होती है। उत्तर हिमालय के लोग भूर्ज की लकडी को खरीदकर बडे सुदर पात्र बनाते हैं। जल-धाराओ को दातो वाले एक चक्र पर गिराकर वे अपने खराद चलाते हैं और उन पर भूर्ज काष्ठ के अनेक आकार-प्रकार के पात्रो की सृष्टि करते हैं। भूर्ज से मिलती-जुलती एक अन्य काष्ठ ऊस्त भी है। यह समुद्रतल से अपक्षाकृत कम ऊचाई पर मिल जाती है। इसकी घटिया लकडी के बरतन भी 'भोज के बरतनो' के नाम से यात्रियो को बेचे जाने लगे है। तीर्थ-यात्री भोज के पवित्र पात्र को अपनी यात्रा की स्मृतिरूप मे हिमालय से लाते है। उसे यदि धोखे से ऊस्त की लकडी का पात्र दे दिया गया, तो वह माग मे ही फट जाता है और तब यात्री उसे फेंक देता है, जिससे उसका भार हलका हो जाता है। केदार घाटी मे इस पर एक कहावत प्रसिद्ध है

ऊस्त फूस्त की लकडी,
भोजपत्र का भाव।

ऊखीमठ पर जाय के,
हलका हो जाय भार।

अर्थात्, ऊस्त जैसी निकृष्ट लकडी का पात्र भोजवृक्ष की लकडी के पात्र के भाव पर खरीद तो लिया गया है, परन्तु ऊखीमठ तक पहुचते-पहुचते वह फट जायगा और फेकना पड जायगा, तब बोझ हलका हो जायगा।

केदार-बदरी के दर्शन करने जाने वाले श्रद्धालु यात्री अपने साथ भोजवृक्ष की लाठी घर ले जाते है। श्री केदार भगवान या श्री बदरीविशाल के प्रसाद के रूप मे भोजपत्र की लाठी को घर मे रखना मगलमय माना जाता है।

भोजपत्र (बेटुला उटिलिस) मे से एक उडनशील सुगधित तेल पृथक किया गया है। सुगन्धित तेलो के उद्योग मे इसकी खपत की बहुत सभावनाए हैं।

भोजपत्र की छाल का फाण्ट दीपक है। योपापस्मार (हिस्टीरिया) मे छाल का फाण्ट पिलाया जाता है। छाल का फाण्ट एण्टीमैप्टिक है। देशी चिकित्सा में भोजपत्र (बेटुला भोजपत्र और एल्नायडिस) सर्पदश की चिकित्सा मे काम आता है। परन्तु कायस और म्हस्कर (इडियन मेडिकल रिसर्च मेमायस सख्या १६, जनवरी १६३१) ने अपने परीक्षणों में दिखाया है कि सर्पदश की चिकित्सा में शरीर में विद्ध किये गए विप को रोकने, उसे प्रभावहीन करने या उतारने में भोजपत्र का कोई प्रभाव नहीं है। ०

शीतल परिमल
चन्दन

संस्कृत काव्यो के अनुशीलन से हमें ज्ञात होता है कि परिमल कला (पर्फ्यूमरी) में सफेद चन्दन का ऊचा स्थान था। चदन चूकि शीतल होता है, इसलिए गरमियो में इसका विशेष प्रयोग किया जाता था।

चन्दन वृक्षों के साथ सापो के लिपटे रहने की बात काव्य-ग्रन्थो मे बार-बार आई है। रघु ने दिग्विजय मे मलयाद्रि (दक्षिण) में पहुचकर अपने हाथी जिन चन्दन वृक्षो से बाधे थे, उन पर ऐसे बडे तथा बलशाली साप लिपटे हुए थे कि गले के बधनो के वृक्ष से बाधे गये सिरे सापो के कारण नीचे नही खिसक सके थे। क्रौंचावत पर्वत पर भवभूति (७४० ईस्वी पश्चात्) ने चदन के पुराने वृक्षो पर लिपटे हुए उन सापो का उल्लेख किया है, जो मोरो की आवाजो से सहमे हुए है। सुहृदभेद के विवेचन मे नारायण पडित (११वी शती) ने सुखो के साथ दु ख का मेल दिखाते हुए चदन-तरुओ पर सापो का वास बताया है। इसी प्रकार उन्होने चदन जैसे भले वृक्ष के प्रत्येक भाग को दुष्ट हिंसको का आश्रय दिखाते हुए जड मे सापो का आश्रय बताया है। राजा दुष्यन्त ने लडके से कहा था, "जिस तरह सतोगुण वाला चदन भी काले साप के लिपटने से दूषित हो जाता है, भले ही वह साप अभी बच्चा हो, उसी तरह जन्म से ही जब तेरी वृत्तिया आश्रमीय वातावरण के विरुद्ध हैं तो सयम भी क्या करेगा?" कालिदास के इस विश्वास के विपरीत रहीम (१६१०-१६८३ सवत) कहते है कि जब सापो के लिपटे रहने पर भी चदन मे विष नही व्यापता तो उत्तम प्रकृति वालो का कुसग क्या बिगाड सकता है? कालिदास (चौथी शती ईस्वी पश्चात्) के धनुर्धारी

परशुराम साप लिपटे हुए चदन वृक्ष के समान लगते है, और बाण के प्रतिहारी के हाथ मे तलवार चदन वृक्ष पर लिपटे हुए विषैले साप के समान भीषण और रमणीय भी दीखती है।

चदन पर साप लिपटे रहने की ऐसी कल्पनाओ के सस्कृत-साहित्य मे से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते है। आयुर्वेद अथवा सर्प-विद्या के विद्यार्थी की दृष्टि से इन प्रसगो पर विचार करने मे मुझे प्रतीत होता है कि लेखको ने चदन के शीतल गुण को ही प्रधानता देते हुए यह कल्पना की है। लोक-विश्वास के अनुसार सप मात्र ही विषैला होता है और चूकि विष का काय बहुत उग्र अथवा उष्ण है, इसलिए उसे धारण करने वाले साप शीतलता के प्रतीक चदन पर लिपटे रहे तो उनकी उष्णता सीमा से परे नही जाने पायगी। कुछ उदाहरणो को देखने मे यह बात स्पष्ट हो जाती है। ऊपर के उदाहरणो मे धनुप और तलवार उग्रता या उष्णता का प्रतिनिधित्व करते हैं। कबीर (१४५६-१४७५ सवत्) ने अपनी साखी मे एक दोहे मे यह बात बिलकुल स्पष्ट प्रतिपादित की है। वे कहते है, "करोडो असन्तो के मिलने पर भी जैसे सत अपनी सज्जनता नही छोडते, उसी प्रकार सापो से बेधा जाने पर भी चदन, अपनी शीतलता नही छोडता।"

बाण ने एक जगह चदन की सुगध पर सापो के मुग्ध होने की कल्पना की है, "युवक की छाती पर चदन का लेप और भुजाओ पर इन्द्रनील मणिया ऐसी लगती है जैसे चन्दन की सुगध से खिचे दो सापो ने भुजाओ को लपेट रखा हो।" अपनी विशिष्ट गध के कारण, भारत और चीन में सफेद चदन की लक्डी प्राचीन समय से बहुत अधिक मूल्यवान समझी जाती

रही है। हिन्दुओं के धार्मिक कृत्या में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। घिसे हुए चदन को पोतकर ब्राह्मण और सन्यासीजन अपने सम्प्रदाय के चिह्नो को शरीर पर अकित करते हैं। पारसी लोग, अपने मदिरो मे पवित्र अग्नि को चदन से प्रज्ज्वलित करते हैं। सस्कृत और चीनी के आरम्भिक साहित्य में हमें चदन काष्ठ का उल्लेख मिलता है। मिस्रवासी इसे सत्रहवी शती ईस्वी पूर्व से जानते हैं।

यह मध्यम आकार वाला सदा हरा वृक्ष है। सम्भवत यह मूलत भारत मे उगने वाला वृक्ष है। क्यू बुलेटिन सख्या ५ में दिखाया गया है कि इसके वास्तविक उद्भव-स्थान के बारे मे औद्भिदीविज्ञो मे मतभेद है। मैसूर राज्य, कुर्ग, कोयबटूर और तमिलनाडु के दक्षिणी भागो मे यह या तो जगलो मे पाया जाता है या इसकी खेती की जाती है। भारत मे नीलगिरी पर्वतो से आरम्भ करके मैसूर मे होते हुए उत्तर और उत्तर पश्चिम की ओर बढें तो यह तीन सौ चौरासी किलोमीटर लम्बी और छब्बीस किलोमीटर चौडी पट्टी बनती है, जिस क्षेत्र मे से भारत अधिकतर चदन काष्ठ प्राप्त करता है। इस प्रदेश मे पेड समुद्र-तल से १,२१९ मीटर की ऊचाई तक उग आते है। अनुमान है कि चदन के वनो का कुल क्षेत्र लगभग छह हजार वर्ग मील है, जिसमे से लगभग पिचासी प्रतिशत क्षेत्र तो मैसूर और कुर्ग मे ही आ जाता है।

इसकी शाखाए पतली और नीचे की ओर गिरती हुई होती हैं। ३ ७५ सेन्टीमीटर से ५ सें मी लम्बे, पतले, ऊपर से चमकीले, नीचे से पाण्डूर पत्ते आमने-सामने लगते है। भूरे जामुनी रग के नन्हे-नन्हे फूल खिलते हैं। सात मिलीमीटर व्यास के फल कच्चे

होने पर हरे और पकने पर जामुनी-काले गूदेदार हो जाते है। पके फल को हाथ से मसलने पर गूदे से बीज झट से अलग हो जाता है, जो कठोर होता है। बीजो को उगाना सुगम है। परीक्षण के लिए मैंने जो बीज बोए थे, वे प्राय सब उग आए थे। हरिद्वार, देहरादून, दिल्ली, पूना और उडीसा की जलवायु में मैंने सफेद चदन के कुछ वृक्ष उगे देखे है।

चदन का वृक्ष पराश्रयी प्रकृति का है। उगने के कुछ महीनो के बाद जडो के प्रचूपाग कोपा घासो, छोटी झाडियो, शाकीय क्षुपो और कभी-कभी बडे वृक्षो की जडा के अन्दर प्रविष्ट हो जाती है। बास के पत्तो के आवरण से बनी टोकरियो में चदन के छोटे पौधे किसी दूसरे छोटे पौधे के साथ रोपे जाते हैं, जो पोपिता-पादप का कार्य सम्पन्न करता है। बीजो को या तो क्यारियो में बोया जाता है या एक छिद्र मे दो-तीन बीज बोए जाते है। पिछले तरीके में लाल मिर्च का एक बीज भी चदन के बीजो के साथ डाल दिया जाता है। लाल मिर्च का बीज पहले उग आता है। इसका पौधा चदन के नवोदित अकुरो को छाया पहुचाता है और अपनी जडो से उन्हे भोजन भी देता है। यह नाजुक पेड है और पुनरारोपण की प्रक्रियाओ मे होने वाले आघातो से बहुत हानि उठाता है। स्पाइक नामक एक रोग से ग्रस्त होने की सम्भावनाए चदन वृक्ष मे बहुत हैं। यह छूत का रोग बहुत अधिक फैलने वाला है। चदन की खेती के विस्तृत क्षेत्रो को यह रोग नष्ट कर डालता है। हानि तब विशेष रूप से अधिक होती है जब वृक्ष पास-पास इकट्ठे लगे हो। इसलिए इसकी समुचित खेती में बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है।

इस पौधे की वृद्धि मे भूमि की किस्म का महत्वपूण भाग है। अपने प्राकृतिक निवास से जब इसे दूर बोया जाय तो अपने उडनशील तेल के परिमाण को यह बहुत अधिक खो देता है। उपजाऊ प्रदेशो में उगाए हुए वृक्षो की अपेक्षा कठोर, चटटानी अपसीय भूमियो में उगाए वृक्षो में सार काष्ठ अधिक बन जाती है, जिससे तेल प्रचुर परिमाण मे निकलता है। मसूर के बाहर भारत के अन्य भागो मे चदन वृक्षो को उगाने के और उनसे तेल निकालने के प्रयत्न किये गए हैं, परन्तु उनमें अधिक सफलता नही मिली। प्राचीन अभिलेख बताते है कि कुछ काल पूव कन्नौज, में चदन का तेल निकाला जाता था, परन्तु इस उद्यम के बारे में अधिक ज्ञान उपलब्ध नही होता। सम्भव है कि उस भाग में चदन की कमी के कारण यह उद्योग स्वय ही मर गया हो।

अठारह-बीस बरस में चदन के वृक्ष परिपक्व होत है, तब सार काष्ठ बढकर पृष्ठ से पाच सेन्टीमीटर की दूरी के अदर तक पहुच गई होती है। ऐसे वृक्ष गिराये जाने के लिए पक गए होते है। अधिक अच्छा यह समझा जाता है कि सत्ताईस से तीस साल तक के पूण उन्नत वृक्षो को जड से ही उखाड लिया जाय। पेड गिराने के बाद छाल उतार ली जाती है, बाहरी सफेद कच्ची लकडी और शाखाए अलग कर दी जाती है, क्योंकि ये सुगधरहित होती है। साफ सार काष्ठ को तब लगभग पिचहत्तर सेन्टीमीटर लम्बे खण्डो मे आरो से काट लिया जाता है। एक बद घर मे तब इसे सुखाने के लिए रख देते है। कहते है कि इस विधि से काष्ठ की सुरभि उन्नत हो जाती है। पूरे वृक्ष के भार का लगभग एक तिहाई सार काष्ठ का भार बैठता है।०

सत्, रज और तम
का प्रतीक

बिल्व

भारत के शुष्क प्रदेशो मे यह स्वत उगने वाला वृक्ष है। उप-हिमालय के वनो मे यह सवत्र मिल जाता है। पश्चिमी हिमालय मे समुद्रतल से १,२१६ मीटर की ऊचाई तक पहाडो पर स्वय उगता है। बगाल मे, मध्य तथा दक्षिण भारत मे, पाकिस्तान मे और ब्रह्मदेश मे यह जगली अवस्था मे पाया जाता है।

यह एक छोटा या मध्यमाकार वृक्ष है। पत्ते सामान्यतया तीन पणको मे विभक्त होते है। कभी-कभी एक पत्ते मे पाच पणक भी देखे गये है। शाखाए बहुधा बहुत से, सीधे, लम्बे, कठोर, नुकीले काटो से सज्जित होती है। गरमियो मे नए पत्ते निकलने के बाद हरे-से सफेद रग के फूल शाखाओ के साथ छोटे गुच्छो मे, अधिकतर जून मे, खिलते है। उनमे सुमधुर शहद जैसी सुगन्ध होती है। फल का आरपार नाप लगभग तीन सेंटीमीटर होता है, जिसमे चार या पाच पखडिया और तीस से साठ तक पुकेसर होते है। फूलो के झडने के साथ ही नन्हे-नन्हे फलो से वृक्ष भर जाता है। धीरे-धीरे बढते हुए ये साल भर में पकते है।

फल चिकने, कच्ची अवस्था में हरे, पकने पर पीले पड जाते है। सामान्यतया ये गोल होते है, परन्तु लम्बोतरे और नीचे से चपटे फल भी मैंने देखे हैं। इनके कठोर छिलके के अदर मृदु, पीला या नारगी वर्ण का, स्वच्छ, चमकीला गूदा रहता हैं, जिसमे सुमधुर सुगध और बढिया स्वाद होता है।

गर्मियो भर शीतल फल के रूप में इसे विभिन्न रूपो में खूब प्रयोग किया जाता है। बरसात शुरू हो जाने पर इसका

प्रयोग प्राय बन्द हो जाता है। उत्तर प्रदेश में एक कहावत है कि आषाढ मे बेल नही खाना चाहिए। बरसात शुरू होने पर पके फल समाप्त हो जाते है।

फलदार वृक्षो के पौधे बेचने वाले उत्पादको ने उन्नत कृषि के द्वारा बेल के ऐसे पेड बना लिये हैं, जिनमें काटो का अस्तित्व प्राय जाता रहा है और उनके फल आकार मे बहुत बडे, सुगधित, मीठे और पतले छिलके वाले बन गए है। कुछ फलो के छिलके इतने पतले होते हैं कि हथेलियो के बीच मे दबाने से टूट जाते है। ऐसे फलो को 'कागजी बेल' कहते है। बोये हुए वृक्षो के फल मनुष्य के सिर के बराबर भी बडे हो जाते है।

उपयोगी फल होने के कारण तथा धार्मिक महत्त्व के कारण यह बगीचो और मन्दिरो में काफी परिमाण मे भारत मे सब जगह बोया जाता है।

बाजार में मिलने वाले फलो को दो समूहो मे बाटा जा सकता है। एक तो वे, जो आकार मे छोटे है और जगलो में स्वय पैदा होते है। दूसरे वे, जो बडे होते है और जिन्हे बगीचो में उगाया जाता है। चिकित्सा-प्रयोजनो मे दोनो प्रकार के फल काम आते ह। फल जब पूर्ण विकसित हो जाय और पकने लग, तभी तोड लेने चाहिए।

हिंदू लोग इसे उवरता का प्रतीक और बहुत पवित्र तथा समृद्धि देने वाला पौधा मानते हैं। कहा जाता है कि तीन पणको म विभक्त हुए पत्ते भारतीय दार्शनिको के सत्त्व, रज और तम के, जागृत, सुषुप्ति और स्वप्न—इन तीनो अवस्थाओ के तथा भूत, वर्तमान और भविष्य इन तीनो जीवनो के प्रतीक

माने जाते है।

बेल के पत्ते शकरजी का आहार माने गये हैं, इसलिए इन्हे महादेव के ऊपर चढाते हैं। भारत में सवत्र शिव की पूजा के लिए विल्व-पत्र आवश्यक माना जाता हैं। इसके विना शिव की पूजा अर्चना अधूरी मानी जाती हैं। शिव भक्तो का विश्वास हैं कि पत्तो के तीनो पणक शिव के तीनो नेत्रो को प्रिय हैं।

इसके फूलो और पके फलो में मीठी सुगध आती है, जो हृदय को भाती है। इसलिए सस्कृत म विल्व को 'हृद्यगन्ध' भी कहते है। श्रीहर्ष (१२वी शती) ने इस सुगध की तुलना चदन की सुरभि मे की है। भवभूति ने विल्व की सुरभि से परिपूण वन-पवता के खण्डो का वर्णन किया है।

राजा नल ने उद्यान में पके हुए विल्व फल देखे, जो हवा के झोको से हिलाए जाने के कारण, काटो ने उन पर खरोचे डाल दी थी, उनम से चदन के सार की सुरभि मानो उडेली जा रही थी और नारी के स्तनो के तुल्य वे गोल तथा कठोर थे।

छाल से जो गोद रिसती है, वह अच्छी अभिलागी लेपी बनती है। इसके फलो की चाय स्वादिष्ट होती है। श्रीलका मे इस चाय का बडा प्रचलन है। वहा इसके फूलो से बनी चाय को 'बेलिमल' कहा जाता है। पत्ते और शाखिकाए ढोरा के चारे के रूप मे काम आते हैं। ऊटो को ये खूब खिलाए जाते हैं। ऊट पालक चैत्र मे अपने ऊटो को इसके फल खिलाते हैं। वसत आने पर मौले हुए शीशम को ऊट खूब चरता है। इससे कहते हैं कि उसे वायु के विकार और खुजली हो जाती है। इसकी चिकित्सा करने के लिए ऊट-पालक बेल के फल खिलाते है।

छोटे फलो को तो ऊट अपने जबडो से तोड लेते है, परन्तु बडे फलो के दो-तीन टुकडे करके उसके आगे फेक दिये जाते है। पवित्र होने से इसकी लकडी की उपमा चदन से की जाती है। फूलो से मधुर-गधयुक्त अर्क खीचा जाता है। कपडो को धोने के लिए साबुन के प्रतिनिधि के रूप मे गूदा प्राय काम आता है, क्योकि इसमे अपक्षालक गुण होते हैं।

चूने के साथ गूदे को मिलाकर चक्की मे पीस ले, तो बडा पक्का सीमेंट बन जाता है। बीजो के चारो ओर जो गोद जमा रहता है, वह चूने को दृढता प्रदान करता है। जलाशयो और कुओ आदि की चिनाई मे यह बहुत प्रयुक्त होता है। जलागारो मे, जहा पॉलिशदार सतह बनाने की आवश्यकता हो, वहा यह वार्निश का काम करता है। भवन-निर्माण करने वाले विशेषज्ञो का सुझाव है कि दीवारो की चिनाई मे बरते जाने वाले मसाले मे यदि बेल के गूदे को भी मिला लिया जाये तो लाभदायक होगा। चिनाई के मसाले को जहा चक्कियो मे पीसकर गारा बनाते हैं, वहा तो गूदे को अन्य सामान के साथ पीस लेना चाहिए। चूने-सुर्खी को भारी-भरकम चक्कियो मे पीसने के पुराने प्रभावकारी तरीको को जिन्होने छोड दिया है, वे गूदे को पानी मे काढा बनाकर मसाले मे मिला लेते है। जिन प्रदेशो मे बिल्व के जगल बहुतायत से है, वहा गाव वालो को अपनी मिट्टी की दीवारो को बनाने मे भी गारे के अन्दर बेल मिला लेना चाहिए। इससे उनकी कच्ची दीवारो की आयु बढ जायगी।

पके फल का ग्राही छिलका रजन मे तथा चर्मसस्कार मे प्रयुक्त होता है। कच्चे फल के छिलको से पीला रग प्राप्त होता

है, जो हरड के साथ मिलाकर कपडो की छपाई मे काम आता है।

लकडी आपीत श्वेत या आधूसर श्वेत, कठोर और चमकदार होती है। ताजी काटी जाती हुई लकडी मे सुरभि होती है। इस पर बहुत बढिया पॉलिश चढती है। भवन-निर्माण, गाडिया बनाने, कृषि के उपकरण, तेल और गन्ने के कोल्हू बनाने तथा मीनाकारी के लिए इसकी लकडी बहुत अच्छी है। प्रति घनफुट लकडी का भार लगभग पचास किलोग्राम होता है। यद्यपि यह उत्तम कठोर काष्ठ है, तथापि मूल्यवान् फलो को देने के कारण इसका पेड प्राय काटा नही जाता।

हमारे देश मे शीशियो के प्रचलन से पूव वैद्य, हकीम और पसारी बेल के सूखे फलो मे दवाए रखते थे। वृ त से जिस स्थान से फल अलग होता है, उस जगह से छिद्र करके किसी कील की सहायता से अन्दर का गूदा निकालकर साफ कर लेते है। सुघनी रखने की डिबियो आदि के लिए इसका उपयोग अब भी देहाती लोग कर रहे है।

पके हुए बिल्व के गूदे को पानी मे हाथ से मसल मसलकर घोल लें। छानकर बीज और रेशे फेंक दें। साधू लोग तथा गरीब लोग इसे ऐसे ही पी जाते है। यह आहार और स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम होता है। अमीर लोग इसमे चीनी या शक्कर मिलाकर इसे अधिक मधुर बनाकर पीते ह। कुछ लोग इसमे जरा-सी सोठ और काली मिर्च का चूर्ण भी बुरक लेते है। पानी के स्थान पर अनेक लोग इसमे दूध या दही मिलाते हैं। दही मिलाकर बनाया शबत पेट के रोगिया के लिए लाभदायक माना जाता है।

चिकित्सा की भारतीय पद्धतियो मे बेल के अनेक भाग काम आते है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध द्रव्य दशमूल के अग के रूप मे यह बहुत विस्तृत रूप से प्रयोग किया जा रहा है।

अपक्व या अधपका फल ग्राही, दीपक और पाचक होता है। शल्कि द्रव्यो और निर्यासोदीय पदार्थों की उपस्थिति के कारण यह अतिसार की अत्युत्तम दवा माना जाता है। पुराने दस्तो मे तो यह विशेष रूप से उपयोगी समझा जाता है। आयुर्वेद के चिकित्सक इसमे कभी-कभी अफीम भी मिलाकर प्रयोग करते है। इसके खण्ड काटकर मुरब्बा भी बनाया जाता है। दस्तो और पेचिश (प्रवाहिका) मे वैद्य इसे बहुत हितकर मानते हैं। पका फल मधुर, सुगधित और शीतल होता है। ताजा लिया जाय तो यह अनुलोमक होता है। पके फल का गूदा सुखा लिया जाय तो यह हल्का नारगी या मास-वर्ण का बन जाता है। पानी मे इसे घोले तो यह स्वादिष्ट नारगी वर्ण का शर्बत बन जाता है, जिसमे मृदु ग्राही गुण होते है। पके फल का छिलका ग्राही है और चिकित्सा मे काम आता है।

कच्चा हो या पक्का, दोनो ही रूपो मे बेल आतो के रोगो मे अद्भुत लाभ करता है। इसमे विद्यमान गोद आतो की भीतरी दीवार को चिकना करता है। जिन लोगो की आते बहुत रूक्ष रहती है, जिससे उन्हे चिरस्थायी मलबन्ध बना रहता है, मल कठोर रूक्ष सुद्दो के रूप मे कष्ट से आता हुआ गुदाद्वार मे घर्षण करके रुधिर के साथ विसर्जन होता है, उन्हे बेल खाने से लाभ होता है। इसी प्रकार जिनकी आते शिथिल रहती है, शौच पतले दस्तो के रूप मे या मरोडो के साथ बार-बार आता है, उन्हे इसके प्रयोग से लाभ होता है।

यह आतो की तरग गति को नियमित करता है, पतले मल को बाध कर और कठोर मल को मृदु करके लाता है। आतो के रोगियो को प्रतिदिन एक फल खा लेना चाहिए। जिस मौसम मे पका फल न मिले, उसमे कच्चे फल को भूभल मे भूनकर खाना चाहिए। कच्चे फल की गिरी को धूप मे सुखाकर चूर्ण बनाकर रख लेते हैं। जिन दिना कच्चे य, पक्के बेल उपलब्ध न हो, उन दिनो इस चूर्ण की फकी ले लेते हैं। अतिसार और पेचिश (डिसेण्ट्री) मे यह लाभ देता है। फलो का ताजा रस कडवा और चरपरा होता है। इसे पानी के साथ जरा हल्का गरम करके जुकाम मे तथा जुकाम के कारण हो गये हल्के बुखार मे देते है। जड की छाल का काढा मनोवसाद, विषण्णता और हृदय की धडकन मे दिया जाता है। सविराम ज्वर मे जड की छाल का काढा बना कर पिलाया जाता है। स्याम मे फल का छिलका केश तेलो को सुवासित करने के काम आता है। शाखाए दातुन के रूप मे प्रयुक्त होती है। पत्तो को पीसकर पुल्टिस बनाई जाती है, जो शोथ-युक्त भागो पर बाधी जाती है। नेत्र-शोथ मे पत्तो को रगड कर बाधते है। ०

कल्पवृक्ष
नारियल

"नारियल का ऊचा पेड, उस पर फलो की विपुलता देखते ही तोता प्रसन्न हो गया। धान के पके खेतो को छोड-कर वह मूर्ख नारियल के पेड पर जा बैठा। खाने की लालसा से वह फलो को तोडने की कोशिश करने लगा। उसकी अभि-लाषा ही न केवल चूर्ण हुई, चोच भी चूरा वन गई।" संस्कृत के कवि की इस अन्योक्ति मे नारियल के दृढ कवच की निन्दा की गई है, परन्तु विष्णु शर्मा ने इधर ध्यान न देकर कवच के अन्दर विद्यमान मीठी गिरी और मीठे रस की प्रशसा की है। हितोपदेश मे वे लिखते है, "सज्जन, नारियल के समान अदर से मीठे और हित करने वाले होते है, पके लाल बेरो के समान नही, जो बाहर से ही मनोहर दीखते हैं।"

कालिदास के समय नारियल की एक शराव (आसव) का वहुत प्रचलन था। दिग्विजय की यात्रा मे रघु ने कलिंग नरेश को जीतकर महेन्द्र पर्वत पर शिविर लगाया था। "रघु के वीर सैनिको ने पर्वत पर पान के पत्ते बिछाकर मदिरालय वनाया और वहा नारियल की मदिरा के साथ साथ उन्होने शत्रुओ का यश भी पी लिया।" एक पुराने लेखक शोढल ने अपनी गद-निग्रह पुस्तक के रसायन वाजीकरण अधिकार मे नारियल के एक आसव का विवरण दिया है। शोढल का कहना है कि परम श्रेष्ठ शम्भू की कृपा से उन्हे इस नारियल आसव का ज्ञान हुआ था। इसे तैयार करने को विधि इस प्रकार है—कच्चे नारियल का जल तेरह लीटर, ईख का रस साढे छह लीटर, सिम्बल की मूसली का रस पन्द्रह मिलीलीटर और दशमूल का काढा पन्द्रह मिलीलीटर लेकर चिकने घडे मे डाले। इसमे सोठ, काली-

मिर्च, पिप्पली, तेजपत्न प्रत्येक १९५ ग्राम, धाय के फूल ६६५ ग्राम, तगर, लोग प्रत्येक तीस ग्राम डालकर किण्वन के लिए रख दें। आसव तैयार हो जाने पर केसर दो सौ मिलीग्राम, सफेद चदन तीस ग्राम मिलाकर सुर्गधित कर लें। पन्द्रह से तीस मिलीलीटर की मात्ना मे इसका नियमपूर्वक सेवन करने से शरीर की झुरिया मिट जाती हैं, पके वाल काले हो जाते है, बूढा जवान वन जाता है, नपुसक भी पौरुप-सम्पन्न वन जाता है, यह काम का मूत्त रूप है।

हिन्दुओं के मागलिक प्रसगो की सामग्री मे नारियल प्रमुख है। विवाह मे तथा दूसरे ऐसे प्रसगो मे मगल घट पर नारियल को स्थापित करते है। विवाह से पूव जव लडके की शादी तय हो जाती है, तो मगनी की रस्म को पूरा करने के लिए नारियल (गोला) भेजा जाता है। वर-यात्ना के समय यदि मार्ग मे दूसरी वरात सामने से आ जाय तो दोनो पक्ष के वराती नारियल का आदान-प्रदान करके एक-दूसरे के लिए ससम्मान माग दे देते है। वरात जव गाव मे पहुचती है, तो कन्या पक्ष के लोग सवसे पहले नारियल भेंट करके स्वागत करते है। विवाह सस्कार मे वर की झोली मे भी नारियल डालते है। वधू के सुहाग की कामना के निमित्त सहेलिया और रिश्ते की स्त्रिया मौली मे खोपा और कौडिया पिरोकर वधू की कलाई मे बाधती है।

हिन्दू स्त्रिया अपने पति की दीघ आयु तथा उत्तम स्वास्थ्य के लिए कार्तिक मास की कृष्णा चतुर्थी के दिन एक व्रत रखती हैं, जिसे 'करवा चौथ' कहते हैं। पानी से भरा नारियल तोड-कर और उसकी गिरी खाकर इस पवित्न व्रत का अनुष्ठान आरम्भ होता है।

चौवीस मीटर तीस सेन्टीमीटर तक ऊचा, मोटा, शाखा रहित यह वृक्ष है। फूले हुए आधार पर तने को मूलका का समुदाय घेरे रहता है। ऊपर जाकर तना कुछ अनियमित रूप मे मुड जाता है। अन्य ताडो के समान इसके सारे तने पर झडे हुए पत्तो के डण्ठलो के चिन्ह देखे जा सकते हैं। इस तने मे मुडने की क्षमता बहुत अधिक होती है। जोर की आधियो मे नारियल के पेड बहुत झुके हुए दीख पडते है। मजबूत, कठोर डण्ठलो पर ३ ६० से ५ ४० मीटर लम्बे, धनुषाकार, चमकीले हरे पख सदृश पत्तो का मुकुट तने के पतलेपन को पराभूत करके अपना सौन्दय बिखेर रहा होता है। साठ से नब्बे सेन्टीमीटर लम्बे तलवार की आकृति वाले चमश पणक पख के समान चपटे होते हैं और समान दूरी पर लगे रहते है। लचीली चटाई जैसा एक पदार्थ पत्तो के आधार को घेरे रहता है। इसकी एक सतह चिकनी होती है। इसके अन्दर तन्तु पास-पास बने हुए होते हैं। मुकुट के बाहरी पत्तो के अक्षो से निकलती हुई साठ सेन्टीमीटर लम्बी शाखाओ पर बहुत-सी सीखो पर घने गुच्छो मे छोटे फूल लगते हैं। नर और मादा फूल एक ही गुच्छे मे पाये जाते हैं। मादा फूल पुष्पगुच्छ आधार के पास होते है और नर से काफी बडे होते हैं। पुष्पगुच्छ एक पत्र-आवरण मे बद रहता है।

नारियल का फल पकने पर मनुष्य के सिर के बराबर होता है। इस तिकोने फल का बाहरी कठोर आवरण हरा या पीला सा होता है। बाहर के ततुमय स्तर के अन्दर कठोर कवच होता है, जिसके भीतर सफेद श्वितिय (एल्ब्यूमिन्स) पदार्थ का आस्तरण, बीज तथा हल्के दूधिया रग का मीठा जल विद्यमान होता है। कवच के एक सिरे पर तीन छिद्रो के

चिह्न होते हैं । दो चिह्नो मे सूराख करने से अन्दर का पानी बाहर आ जाता है। एक छिद्र के सम्मुख भ्रूण पडा रहता है।

इस अतिशय उपयोगी पौधे को उगाने के लिए बहुत कम देखभाल की जरूरत होती है। पौधे बीज से उगाये जाते है। फलो को रोपणियां (नसरियो) मे जनवरी से अप्रैल तक बोते हैं। फल के भीतर ही बीज का भ्रूण अकुरित हो जाता है। बीजजात पहले फल के अन्दर विद्यमान श्वितीय (एल्व्यूमिन्स) पदाथ को आत्मसात कर लेता है और समूचे कवच को भर देता है। तब गिरी मृदु पड जाती है और जडें कवच की दीवारो से बाहर निकल पडती हैं। एक साल बाद पौधो को नब्बे सेन्टी-मीटर गहरे खोदे हुए गड्ढा मे पुनरारोपित कर देते है। एक मास मे एक के हिसाब से नये पत्ते निकलते हैं। वृद्धि के तीसरे वप मे गिरने लगते हैं। पच्चीस और तीस वर्ष के बीच मे पौधा पूर्ण उन्नत हो जाता है। तब इसमे लगभग अट्ठाईस पत्ते पैदा हो गए होते हैं। फलो की सामान्यतया बारह शाखाए होती है। एक ही समय मे कुछ मे सूखे और कुछ मे पके फल लगे होते हैं। गेंद के आकार तक पहुच जाने पर अधिकतर फल गिर पडते हैं, कुछ ही परिपक्वता तक पहुच पाते हैं। ऐसा होने पर भी अकेला पेड साल भर मे एक सौ फल तो पैदा कर ही देता है। फल मुख्यतया मार्च से जुलाई तक निकलते हैं और प्राय एक वप बाद पकते हैं।

नारियल की फलभित्ति मे कभी-कभी पथरीली मणिया पाई जाती हैं। दो हजार या इनमे भी अधिक नारियलो को तोडने पर किसी एक मे यह मणि निकलती है। रोगो का उपचार करने

और भूत-प्रेतो को भगाने के उद्देश्य से मलय के आदिवासी इसे बहुत सम्भालकर रख लेते है। मलय देश की यात्राओ मे डॉक्टर सिड्ज हिकसन को बहुत प्रयत्न करने पर दो नारिकेल रत्न मिले थे। इनमे से एक चौदह मिलीमीटर व्यास का पूर्ण गोला था। दूसरा आकार मे छोटा था और अनियमित रूप से नाशपाती की आकृति का था। दोनो रत्नो का पृष्ठ चिकना था। गोल रत्न को काटकर दो टुकडे कर लिये गए। एक टुकडे का रासायनिक विश्लेषण करने पर उसमे चूने का प्रागारीय (कैल्शियम कार्बोनिट) पाया गया। उसमे किसी अन्य लवण या वानस्पतिक ततु का अत्यल्प अश भी नही पाया गया। वाल्टर विलियम स्कॉट (१६००) ने कैम्ब्रिज के जाति विद्या (एथ्नोलॉजिकल) सग्रहालय को जो नारिकेल-मणि भेंट दी थी, उस पर गाढे रग के एक छल्ले का निशान बना हुआ था। उन्हे बताया गया था कि नारियल की आख के छिद्र पर चिपका रहने से यह निशान पड जाता है। थिसेल्टन डायर ने इस पथरीली रचना की बनावट की तुलना बास मे बन जाने वाले तवाशीर (वंशलोचन) से की है।

नारियल की लकडी के बुरादे को चूने के साथ मिलाकर एक तापरोधक सीमेंट बनाया जाता है, जिस पर पॉलिश बहुत बढिया चढती है। यह सगमरमर से मिलता-जुलता होता है। पणको की पसलियो (सीखो) से मास भूनने की शलाकाए, बुनने की सलाइया, दात कुरेदने की सलाइया, कघे-कघिया और झाडुए बनायी जाती है। फूलो को धारण करने वाले छोटे डण्ठलो की दातुनें बनाते है। झोपडिया को छतने के काम मे पत्तो का विस्तृत उपयोग किया जाता है। इनकी चटाइया और मशालें

बनाई जाती हैं। दक्षिण भारत मे और श्रीलका मे गरीब लोगो की झोपडिया पूर्णतया नारियल की विविध उपजो से ही निर्मित होती है।

जहा से पुष्पशाखाए निकलती है, वहा एक जाली-सी होती है। वह थैले और आवरणो को बनाने मे काम आती है। ताडी छानने मे भी इनका उपयोग होता है। पत्तो को जलाने से प्राप्त राख मे क्षार की प्रचुरता रहती है। पकने से पहले ही जो फल पेड पर से गिर पडते हैं, वे भी व्यापार मे काम आ जाते हैं। उनसे चिकने फट्टे बना लिये जाते है, जो व्यापारिक नाम 'कोकोनाइट' के अन्तर्गत बेचे जाते है। ये तख्ते मजबूत होते है। इन पर वार्निश और रग-रोगन किया जा सकता है। रेल के डब्बो के अन्दर की दीवारो और छतो के नीचे लगाने के लिए इन्हे काम मे लाया जाता है। ध्वनि और ताप के विसवाहको के रूप मे भी इनका प्रयोग होता है। सूखी गिरी को गोला, खोपा या कोपरा कहते है। इससे निकाला हुआ तेल व्यापार और उद्योग मे बहुत उपयोगी है। मोमबत्ती, साबुन, केश तेल और भोज्य पदार्थों के निर्माण मे यह व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाता है। प्रकाश के लिए भी इसका उपयोग होता है। तेल निकालने के बाद गिरी का बचा हुआ फोक(खली) मुर्गियो और ढोरो को मोटा बनाने वाले भोजन के रूप मे दिया जाता है। ताड के छोटे पौधो और अन्य फसलो मे भी यह खली खाद के लिए डाली जाती है।

भीतर से यह आरक्त बभ्रु वर्ण (भूरे रग का) की मृदु काष्ठ है। परन्तु बाहर से यह कठोर तथा लाल रग की होती है, जिस पर सुन्दर धारिया पडी होती हैं, इस पर पॉलिश अच्छी चढती है।

खराद पर यह अच्छी रहती है। व्यापार मे इस लकडी को 'पोर्क्यूपाइन वूड' कहते हैं।

इसकी लकडी कडियो, खेत की वल्लियो, भाले के हत्थो, छत पर पाटने के गटटुओ, भवन-निर्माण के विभिन्न प्रयोजनो, महिलाओ की कामदार मजूषाओ, हाथ की छडियो, गहनो और चित्र विचित्र पदार्थो के बनाने मे काम आती हैं। इसका कोयला बनाया जाता है। इसके उपस्कर (फर्नीचर) बहुत सुन्दर चित्रित और टिकाऊ बनते हैं। पुलो और छोटी किश्तियो को बनाने मे उसकी लकडी उपयोगी है।

छिलका से निकाले हुए ततुओ को 'नारियल की जटा' (कौयर) कहते हैं। इसका व्यापारिक महत्व बहुत अधिक है। यह पानी मे तो टिकाऊ है ही, समुद्र जल मे भी यह खराब नही होता। इस गुण के कारण यह ताजे पानी और समुद्र के अन्दर काम आने वाली रस्सियो और रस्सो के निर्माण मे प्रचुर उपयोग मे आ रहा है। नारियल जटा से बने जहाजो के रस्से लचीले होते है और समुद्र मे बहुत अच्छे चलते है। सोफा सेट, हॉस्पिटल के गद्दो, टागा आदि वाहनो के गद्दो मे, काठिया आदि मे भरने के प्रयोग मे यह काम आता है। इसके रेशे के पायदान और कूचिया (ब्रुश) बनते है। इसकी जटाओ को बटकर बनाई हुई रस्सियो से निर्मित चटाइयो, गलीचो, दरियो और टाटो को कमरे मे बिछाने का रिवाज खूब बढ रहा है। नारियल के रेशे से अब कठोर तख्ते भी बनने लगे हैं।

कवच गठीला, दृढ और हल्के भूरे रग का होता है। सोडे के घोल मे धोकर इस पर तेल मल दे तो यह चिकना, चमकीला, गाढा भूरा या काला पड जाता है। इसके औद्योगिक,

व्यापारिक और घरेलू प्रयोग बहुत अधिक है। इस पर पच्चीकारी की जा सकती है, लाख का सुन्दर काम किया जा सकता है और धातुओ के पत्तरो से इसे मढा जा सकता है।

घरो में ईधन की जगह कवच बडे परिमाण मे जलाया जाता है। जहा नारियल अधिक पैदा होता है, वहा यह छोटे-मोटे कारखानो मे भट्टियो के झोकने मे काम आ जाता है। कवच को जलाकर एक काला रोगन बनाया जाता है।

दीपन, पाचन और कोष्ठवात प्रशमन के लिए नारियल का मद्य लाभदायक है। पुराने नारियल का स्वरस मलस्रसक है। कच्चे नारियल का पानी मूत्रजनन और मूत्रविरजन है। जिन लोगो के गुरदे पर्याप्त मात्रा मे मूत्र नही बनाते, उनको प्रतिदिन नारियल का पानी पीना चाहिए। इसके वृक्क क्रियाशील होते है और मूत्र की मात्रा बढ जाती है। कच्चे नारियल की गिरी को पीसकर निकाला हुआ दूध (स्वरस) मूत्र की उत्पत्ति को बढाने के लिए दिया जाता है। जिन लोगो को गरमी के कारण पीले या लाल रग का मूत्र कष्ट से स्वल्प मात्रा मे आता है, उन्हे नारियल के पानी के प्रचुर सेवन से लाभ होता है। नारियल का तेल कफनाशक है। नारियल की गिरी पित्तनाशक स्निग्ध, गुरु, स्वादु, मधुर, शीतल, बल-मास को बढाने वाली, बृहण (पोषक) शक्ति को पुष्ट करने वाली, हृदय को बल देने वाली और बस्तिशोधक है। पुराने नारियल का स्वरस पौष्टिकहै।

सूखे गोले के सिर पर से छोटी-सी टोपी उतारकर उसमे ईसबगोल भर दें। टोपी को बिठाकर गीले आटे से सधिबधन कर दे। खुले घी मे इसे हलकी आच पर तल लें। ठडा हो जाने

पर कूट लें। आटे को भूनकर इसमे मिलाकर पजीरी बना लें। जिन लोगो को सिरदद बना रहता है, उन्हे इसे खाने से लाभ होता है।

कच्चे नारियल के अन्दर छिद्र के ऊपर जो भ्रूण होता है, उसे लोक भाषा मे 'नारियल का फूल' कहते है। पुत्र प्राप्ति की आकाक्षा से स्त्रिया उसे खाती हैं। नारियल का मद्य ज्वरहर और निद्रा लाने वाला है। कॉड लिवर ऑयल के प्रतिनिधि रूप मे नारियल का तेल काम आता है। यह शोषघ्न है। क्षय राग मे इसका प्रयोग करने की सिफारिश की जाती है। देशी चिकित्सक क्षय के रोगियो को नारियल की ताडी या नीरा पीने की सलाह देते है। प्रतिदिन प्रात काल यह पी जाय तो सामान्य स्वास्थ्य मे सुधार करती है।

गत महायुद्ध मे सुदूर पूर्व में युद्ध बन्दी जब विटामिन की न्यूनता से कष्ट पा रहे थे तो नारियल की नीरा सेवन करने से ठीक हो गये थे। इसमे विटामिन बी विद्यमान होता है। पर्णको के आधार पर विद्यमान ऊन सदृश घनरोम रक्तरोधी के रूप मे उपयोगी होते है। मेदोवृद्धि मे खोपे का तेल खाने से मेद कम होता है। नारियल का तेल कृमिनाशक है और जख्मो पर लगाने से उन्हे जल्दी भर देता है। नारियल के कवच को जलाकर पाताल यन्त्र से निकाला हुआ तेल त्वचा के रोगो को नष्ट करता है। नारियल का तेल बालो के लिए हितकर है। लम्बे चलने वाले ज्वरो मे तथा निबल कर देने वाले अन्य रोगो मे जब सिर के बाल झड़ जाते हैं तो नारियल के तेल की सिर पर मालिश करने से लाभ होता है। केश तेल के रूप मे नारियल का तेल दुनिया भर के लोग प्रयोग कर रहे हैं। ०
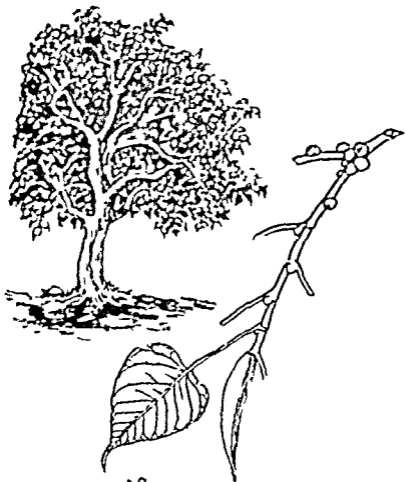
वृक्षों का राजा
पीपल

भारतीय भाषाओ मे इसका सबसे प्रसिद्ध नाम 'पीपल' है, जो संस्कृत के 'पिप्पल' शब्द से निकला है। सस्कृत मे इसके बीस से अधिक नाम है, जिनमे से अधिकाश इसकी पवित्रता को सूचित करते है। सस्कृत साहित्य मे सबसे प्रसिद्ध और प्रचलित नाम 'अश्वत्थ' है। भारत के सबसे प्राचीन साहित्य वेदो तथा भगवद्‌गीता मे पीपल के लिए अश्वत्थ शब्द मिलता है। पीपल को तमिल मे, 'अरस मरम', तेलुगु मे 'रवि मनु', कन्नड मे 'अरुलिमर' और तिब्बती मे 'लालचङ्' कहते है। सिहली मे पीपल को 'बो' कहते है। बौद्ध साहित्य के बोधि वृक्ष का सक्षेप श्रीलका मे 'बो' ही रह गया।

पाश्चात्य देशो को भारतीय वनस्पतियो का ज्ञान कराने वाले वनस्पति-शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् लीनियस ने धार्मिक पवित्र पौधे के रूप मे पाश्चात्य ससार को पीपल का ज्ञान कराया। लीनियस द्वारा दिया गया इसका वैज्ञानिक या औदभिदी (बोटॅनिकल) नाम 'फाइकस रिलिजिओसा' है, जो समस्त ससार के वैज्ञानिको ने दर से अपना लिया है। अग्रेजी शब्द 'फिग' के लिए लेटिन मे 'फाइक्स' शब्द है। यह शब्द उस औदुम्बर गण को प्रतिपादित करता है, जिसमे पीपल, बड, अजीर, गूलर आदि सुपरिचित वृक्ष है और जिनके फल अत-र्निहित रहते हैं। प्रकट रूप मे फूलो के बिना ही इनके गूदेदार फलो की उत्पत्ति समझी जाती है। सस्कृत मे पीपल का एक नाम गुह्यपुष्प' है जिसका अर्थ 'छिपे हुए फूलो वाला वृक्ष' है। 'रिलिजिओसा' शब्द स्पष्ट रूप से इसकी धार्मिक महत्ता को प्रतिपादित कर रहा है।

अग्रेजी मे इसके लिए ये तीन शब्द मिलते है—सेक्रेड फिग (पवित्र औदुम्बर), पीपल और बो ट्री। बो और पीपल शब्द क्रमश सिंहली और सस्कृत से लिये गए है। बौद्धो और हिन्दुओ मे समान रूप से पवित्र समझा जाने से इसका 'सेक्रेड फ़िग' नाम पड गया है।

शाक्य मुनि गौतम ने बुद्ध-गया (बिहार) मे एक पीपल के नीचे घोर तपस्या करते हुए दिव्य प्रकाश पाया था। तभी से वे भगवान् बुद्ध बन गये थे। पीपल के नीचे बोध होने से वह वृक्ष 'बोधि-वृक्ष' के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। उस समय के बाद अर्थात् छठी शती ईस्वी पूर्व से बौद्ध साहित्य मे और उसके साथ-साथ सस्कृत साहित्य मे भी पीपल को सामान्य नाम 'बोधि वृक्ष' दिया जाने लगा।

पीपल दक्षिण एशिया मे बहुत उगता है। भारत और ब्रह्म (बर्मा) देश मे यह सब जगह पाया जाता है और बोया भी जाता है। बहुत शुष्क प्रदेशो मे यह कम मिलता है।

श्रीलका मे अनुराधापुर के पास पीपल का एक महान् वृक्ष है, जो पूजा-पाठ करने वाले भिक्षुओ तथा भक्तो से सदा घिरा रहता है। परम्परागत विश्वास को यदि स्वीकार किया जाय तो ससार के प्राचीनतम वृक्षो मे इसे गिना जा सकता है। विश्वास किया जाता है कि यह बुद्ध-गया के उसी पवित्र बोधि वृक्ष की एक शाखा से २८८ ईस्वी पूर्व उगाया गया था, जिसके नीचे गौतम को दिव्य ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। महावश के अनुसार श्रीलका के सम्राट देवाना प्रिय तिष्य ने सम्राट् अशोक से बोधिद्रुम की एक शाखा श्रीलका मे भेजने की प्रार्थना की थी। अशोक ने इस पवित्र वृक्ष की एक शाखा अपने पुत्र महेन्द्र

और पुत्री सघमित्रा के साथ भेजी थी । इसी शाखा को अनुराधा-पुर मे रोपा गया था ।

कहा जाता है कि पीपल की आयु दो-तीन हज़ार वर्ष तक भी पहुच जाती है । सामान्य वृक्षो की तुलना मे यह बहुत अधिक दीखती है, परन्तु कगुतालो (साइकेड्स) की एक जाति माक्रो-जामिआ से यह बहुत कम है। शिकागो विश्वविद्यालय के प्राध्यापक चाल्स जे० चेम्बरलेन ने दुनिया के कगुतालो (साइकेड्स) का विशेष अध्ययन किया है। उनके अनुसार, आस्ट्रेलिया मे सीमित यह जाति बारह से पन्द्रह हज़ार वर्ष के बीच तक आयु प्राप्त कर लेती है ।

शीतल और घनी छाया देने के कारण सडको के किनारे और गावो मे अब इसे बहुत रोपा जाने लगा है। दिल्ली की अनेक सडको पर पीपल लगाये गए है। पहले यह मुख्यतया धार्मिक उद्देश्यो से घरो, देवालयो तथा गावो के आसपास बोया जाता था । अपनी प्रिय सन्तान की तरह इसका पोषण किया जाता था । स्कद पुराण मे लिखा है कि विज्ञ पुरुष इन छ को सतान मानते हैं—उत्तम शास्त्र का श्रवण, तीर्थ-यात्रा, सत्सग, जल दान, अन्न दान और पीपल का वृक्ष लगाना । वराहमिहिर ने पीपल और बरगद को घरो के सामने समृद्धि तथा सुख-प्राप्ति के लिए बोने की बात लिखी है । पीपल को बीजो से लगाना ठीक रहता है। बरगद के मुकाबले मे शाखाओ द्वारा इसकी उत्पत्ति अच्छी नही होती ।

पक्षियो की बीटो तथा पशुओ के मलो मे बीज दूर-दूर जाकर गिर जाते हैं। पाचक रसो से बीज अप्रभावित रहते हैं। धूल मे पडे बीजो को हवा भी दूर उडा ले जाती है। इस तरह

प्राकृतिक साधनो द्वारा इसका प्रसार बहुत दूर-दूर हो जाता है।

पद्म पुराण मे पीपल और बरगद की उत्पत्ति इस प्रकार बताई गई है—एक बार शिव और पार्वती के रति-सुख मे अग्नि देव ने व्याघात उत्पन्न किया। इस पर पार्वती ने क्रोध मे यह कहते हुए सब देवो को वृक्ष बन जाने का शाप दिया कि "रति-कर्म के सुख को तो पशु पक्षी और कीट भी जानते है, और तुमने मेरे इस सुख को भग किया।" तब ब्रह्मा और विष्णु बोधि वृक्ष तथा वट वृक्ष के रूप मे बन गए।

मोहनजोदडो मे प्राप्त एक मुद्रा के ऊपर अकित पीपल पर पूजा के सात देवी-देवता खुदे हुए है। प्राचीनता और पूजा की दृष्टि से पीपल सारे ससार मे बेजोड है। बहुत-से अन्य वृक्षो की तरह अब भी यह एक पवित्र वृक्ष माना जाता है। इसकी पूजा के साथ बहुत-से पर्वों का सम्बन्ध जोडा जाता है। किन्ही विशेष दिनो मे धन की देवी लक्ष्मी के निवास की कल्पना इसमे की जाती है। उस दिन हिन्दू लोग इसके चारो ओर मत्रो का उच्चारण करते हुए परिक्रमा करते जाते है और धागा तने पर लपेटते जाते हैं। एक अन्य उत्सव पर तने पर लाल सिन्दूर लगाया जाता है। अर्नेस्ट मेसे (अर्ली इण्डस सिविलाइजेशन्स, १६४८, पृष्ठ ५८-५६) के अनुसार, "पीपल के पत्ते बहुत हलकी हवा से भी प्रकम्पित हो जाते है, सभवत इसी कारण इसमे प्राचीनकाल से देवताओ का निवास माना जाने लगा है।" सन्तान-प्राप्ति की आशा से स्त्रिया इस पर भेंट चढाती हैं। कई बार इसकी शाखाओ पर पानी का एक पात्र मृत आत्माओ की तुष्टि के लिए लटका दिया जाता है। ये सब

विश्वास निस्सन्देह अति प्राचीन है। पीपल वृक्ष के साथ इनका सम्बन्ध पूर्व ऐतिहासिक काल से रहा होगा। यह निश्चित प्रतीत होता है कि हड़प्पा के लोगो ने इस वृक्ष को एक विशेष प्रकार के बैल से सम्बन्धित किया था, जो वहा की मुद्राओ पर सामान्य रूप से दिखाया गया था।

भगवान् बुद्ध ने एक जातक कथा मे पीपल को वृक्षो का राजा बताया है। यह कथा उल्लू को राजा बनाने और कौए द्वारा उसका विरोध करने के बारे मे है। पद्म पुराण मे भी इसे 'वृक्षराज' कहा गया है। भगवद्-गीता मे श्रीकृष्ण ने इसे सब वृक्षो मे श्रेष्ठ बताया है। पद्म पुराण मे ब्रह्मा को पीपल का रूप बताया है।

पीपल वृक्ष के समान समादृत तथा पूजनीय वृक्ष ससार मे कम ही होगे। इसके समीप पहुचने पर तिब्बती लोग अपनी टोपी उतारकर सम्मान प्रदर्शित करते है और 'शोलो शोलो' का उच्चारण करते है। इसकी जड पर सफेद पत्थर के छोटे-छोटे दो-चार टुकडे रख देते है। नगी जडो को लाल रग से रग देते है। भारत की भाति यहा भी ऐसी भावना है कि लालचङ् को काटने या नष्ट करने वाले को कुष्ठ रोग हो जाता है।

मुक्ति नाथ प्रदेश मे पीपल को 'शोल बो' कहते है और उसको पूजते है। नेपाल मे भी बगलसिमा (पीपल) का बडा सम्मान किया जाता है। श्रीलका, बर्मा, स्याम, कम्बोडिया आदि मे भी यही भावना है और इन देशो मे इसे 'बोधि वृक्ष' कहकर पूजा करते है।

मध्यकाल के धार्मिक साहित्य मे हमे इस प्रकार के विचार मिलते है कि विष्णु भगवान् स्वय पीपल का रूप धारण किये

हुए है, इसलिए पीपल की पूजा करने से ही विष्णु की पूजा हो जाती है। पुराणो के इन विचारो ने सर्वसाधारण को इसकी पूजा के लिए प्रेरित किया

"प्रतिदिन सुबह-शाम पीपल की पूजा करनी चाहिए, इससे भिन्न समय मे नही। पूजा का मन्त्र यह है, 'आख फडकने बाह फडकने और बुरे स्वप्न दीखने को तथा मेरे शत्रुओ के उत्थान को, हे पीपल ! तू शीघ्र शात कर देता है।' पीपल रूप भगवान् जनार्दन ! मुझे प्रसन्न कर दे। हे पीपल ! तुझे देखकर पाप नष्ट हो जाते है और तुझे देखकर लक्ष्मी आने लगती है, तेरी परिक्रमा करने से आयु लम्बी होती है। हे अश्वत्थ ! तुझे नमस्कार हो !"

कभी-कभी अश्वत्थ-प्रतिष्ठा करने मे बडा खर्चीला समारोह किया जाता है। ब्राह्मण लोग कहते है कि इस उत्सव करने वाले को भगवान के अपार आशीर्वाद प्राप्त होते है। ब्राह्मण के सूत्र धारण के समान पीपल के चारो ओर भी पवित्र सूत्र लपेटा जाता है।

कभी-कभी पीपल का धूमधाम से विवाह रचाया जाता है। इसके युगल के लिए सामान्यतया एक नीम चुना जाता है या केला लिया जाता है। ब्राह्मणो मे विवाह की जो प्रथाए होती हैं, लगभग वही इस विलक्षण विवाह मे सम्पन्न की जाती है। दक्षिण भारत मे जहा-तहा छोटे ढूहो पर नीम और पीपल के वृक्ष साथ-साथ उगे हुए दीख पडते हैं, यह मेल अकस्मात नही हुआ होता, बल्कि यह एक वास्तविक विवाहोत्सव का परिणाम होता है। आब्बे जे० ए० दुबौयस (हिंदू मैनर्स, कस्टम्स ऐण्ड सेरेमनीज, १९०६, तृतीय सस्करण, ऑक्सफोर्ड, पृष्ठ ६५२-६५३)

ने नीम और पीपल के एक विवाह का उल्लेख किया है। अठाहरवी शती के अन्तिम दशक मे उस समारोह मे डेढ हजार रुपये से अधिक खर्च हुआ था।

"पीपल को देखकर जो उसे प्रणाम करता है, वह दीर्घ आयु प्राप्त करता है और उसके पास सब प्रकार की सम्पत्तिया बढने लगती हे।" पद्म पुराण के अनुसार पीपल मे सब तीर्थों का निवास है। इसके नीचे किये जाने वाले धम-कम निर्विघ्न समाप्त होते है। इस विश्वास के कारण ही हिन्दू अपने मुण्डन आदि सस्कार पीपल के नीचे कराते है। इसी से पीपल के वृक्ष को सदा धार्मिक चहल-पहल के स्थान पर पाया जाता है।

यह उपयोगी वृक्ष गर्मियो मे सूख न जाय, इस भावना से धर्म-गुरुओ ने गर्मियो के आरम्भ मे इसे सीचने को प्रोत्साहन देने के नियम बनाये है। उन्होने लिखा है, "विष्णु का प्यारा मनुष्य धम, अथ, काम और मोक्ष का फल प्राप्त करने के लिए वैशाख मास मे विष्णु के अश्वत्थ रूप को प्रतिदिन पानी दे। चुल्लू भर पानी से जो पीपल को सीचता है, वह भी करोडो पापो से छुटकारा पाकर स्वर्ग को जाता है।"

पीपल के विशाल वृक्ष के नीचे सैकडो यात्री आराम करते हैं। उनके सुख के लिए लोगो ने पीपल की जड के चारो ओर सुन्दर शिलाए लगवानी शुरू कर दी। लोकहित के इस कार्य को ब्राह्मणो ने यह लिखकर प्रोत्साहित किया, 'पीपल की जड मे जो शिलाए लगवाता है, उसे अश्वत्थ रूपी भगवान् कौन-सा पदार्थ नही देते," अर्थात् उसकी सब मनोकामनाओ को पूरा कर देते हैं।

पद्म पुराण मे इन ज़ोरदार शब्दो मे इसे काटने की मनाही

की गई है, "पापल को राजवृक्ष और भगवान् का रूप कहा गया है। इसलिए इसे नष्ट करने वाले का रक्षक कोई नही है । पीपल को नष्ट करने वाले मूख मनुष्य की किसी भी प्रायश्चित्त से शुद्धि नही हो सकती । इसकी छोटी-सी शाखा को भी जो काटता है, वह करोडो ब्रह्म हत्याओ का भागी बन जाता है।" इन धारणाओ के कारण ही हिन्दू इसे नही काटते । मुहर्रम आदि के जुलूसो के अवसर पर राह मे बाधा डालने वाले पीपलो को जब जुलूस वालो ने काटना चाहा तो हमारे देश मे अनेक बार बडे-बडे दगे हुए और हिन्दुओ ने अपनी इस धार्मिक भावना को सुरक्षित रखने के लिए महान् बलिदान दिये । किसी मकान, कुए की दीवार या किसी अन्य अनुपयुक्त स्थान पर यह जम गया हो तो किसी दूसरे धर्मावलम्बी को इसे काटने का काम सौपा जाता है ।

धार्मिक महत्त्व के अतिरिक्त व्यापारिक और चिकित्सा की दृष्टि से भी यह एक महत्त्वपूण वृक्ष है ।

पीपल की छाल से निकाले हुए रग को ही 'काषाय रग' कहते है, जिससे भिक्षुओ का चीवर रगा जाता है। पीपल की छाल से रग बनाना प्रत्येक भिक्षु जानता है। ऐसे ही आम, कटहल और बरगद से भी । छाल से ततु निकाले जाते है। रस्सो को बनाने मे इन ततुओ का उपयोग होता है । वर्मा मे छाल पहले कागज बनाने के काम आती थी। छाल को पकाने से आरक्त वण का रग प्राप्त होता है । जड के काढे मे फिटकरी मिलाकर सूती कपडो को हलके गुलाबी रग मे रगा जाता है । छाल उपयोगी शल्क द्रव्य है। चर्म-सस्कार मे पत्ते भी काम आते है । छाल मे कुछ शल्कि (टैनीन) होता है और कभी-

कभी यह चमडा तैयार करने तथा रगने मे इस्तेमाल कर ली जाती है। चिपचिपा, सफेद आक्षीर पडा रहने दिया जाय तो जमकर कठोर गोद जैसा बन जाता है। इससे एक ऐसा पदार्थ तैयार किया जाता है, जो गहनो की खोखली गुहाओ मे भरने के काम आता है और समुद्रण लाक्षा के रूप मे इस्तेमाल किया जाता है।

पीपल के आक्षीर से पक्षियो को फसाने का एक चिपचिपा द्रव्य (लीसा) बनाया जाता है। लाक्षा-कीट का यह महत्त्वपूर्ण पोषिता पादप है।

इसकी लकडी घटिया किस्म की है, बहुत हल्की है तथा स्थूल तन्तुमय है। जलाने के अतिरिक्त अन्य कामो मे प्राय नही बरती जाती। इसके तख्ते कभी-कभी सस्ते भरण-आवरणो (पैकिंग केसा) को बनाने मे काम आ जाते है। कोई और लकडी न मिले तो गाव वाले इसके जुए तो बना लेते है। लकडी टिकाऊ न होने से झोपडियो की बल्लियो, मकानो के शहतीरो आदि किसी भी स्थायी प्रयोजन मे काम नही आती। सस्कृत का अश्वत्थ नाम इस गुण को बडी खूबी से प्रकट करता है। इसका अर्थ है ऐसी लकडी, जो कल तक भी नही टिकेगी।

छोटी शाखाओ और छाल को हाथी चाव से खाते है। हाथियो का प्रिय भोजन होने से सस्कृत मे पीपल को 'गजभक्ष' और 'कुजराशन' नाम भी दिये गए है। हाथियो के अतिरिक्त भैसो और सामान्यतया सभी ढोरो का अच्छा भोजन होने से पत्ते और शाखाए चारे के लिए सब जगह इस्तेमाल होती है।०
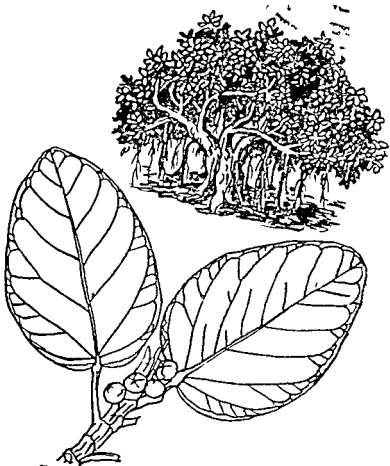
अमरता का प्रतीक
वटवृक्ष

प्रयाग मे ईसा की आरम्भिक शताब्दियो मे वरगद का एक महान् वृक्ष था, जो मध्य काल तक वहा खडा था। चित्र-कूट को जाते हुए सीता जब उस वट के पास पहुची तो उन्होंने अनेक वृक्षो मे घिरे हुए उस महावृक्ष को नमस्कार किया और अपने पातिव्रत धर्म का पालन करने की सामर्थ्य उस श्याम वट से मागी थी। हाथ जोडकर सीता ने उससे निर्विघ्नता के लिए आशीर्वाद भी मागा था। वनवास से जब राम लौट रहे थे, तो वह वट चमकीले लाल फलो से सुशोभित हो रहा था। उसके सौन्दर्य से विमुग्ध होकर श्रीराम सीता से कहते है, "तुमने पहले जिससे याचना की थी, वह प्रसिद्ध श्याम वट यही है। नीलम के ढेर मे जैसे पुखराज जडे हो, फला हुआ यह श्याम वट उसी तरह दीप्त हो रहा है।" श्याम वट के गूढे हरे या नीले रग के पत्तो की यहा नीलम (गारुड मणि) से तुलना की गई है और दीप्त लाल फलो की पुखराज (पद्म राग) से। महर्षि वाल्मीकि (४०० ईस्वी पूर्व) ने जिसे श्याम न्यग्रोध और कविगुरु कालिदास (६०० ईस्वी पश्चात्) ने जिसे श्याम-वट लिखा है, आठवी शती के भवभूति ने भी उसे श्याम-वट के नाम से ही उल्लेख किया है। लक्ष्मण कहते है, "कालिन्दी के तट पर और चित्रकूट को जाने वाली सडक के किनारे अवस्थित जिस श्याम नामक वट को भरद्वाज ने बताया था, वह यही खडा है।" उस समय तक लेखको ने यद्यपि इसे एक असाधारण वृक्ष समझा था, तथापि इसे दिव्यता और अलौकिकता प्रदान करने वाले बाद के लेखक प्रतीत होते हैं। मुरारी के समय (१०५०-११३५) यह निश्चित रूप से अद्भुत शक्ति-सम्पन्न ऐसा वृक्ष माना

जाने लगा था, जिसकी छाया मे रहने वाले परज्योति के साथ निवास करते हुए माने जाते थे।

दो सौ ईस्वी पूर्व के लगभग महर्षि व्यास ने प्रयाग के पास गया पर्वत पर उगे हुए एक वट वृक्ष को अक्षय वट नाम दिया था। पाडवो ने वनवास मे एक चौमासा उसी के नीचे बिताया था। यदि यह वही सीताजी वाला श्याम न्यग्रोध था तो न जाने क्यो काव्य-रचयिताओ की कल्पनाओ को अक्षय वट जैसे कल्पना-प्रसूत नाम ने प्रभावित नही किया ? क्योकि काव्यो मे तो बहुत देर तक इसे श्याम वट या श्याम न्यग्रोध ही कहते रहे थे। कही ऐसा तो नही कि अक्षय वट की महत्ता वाले ये श्लोक व्यास के रचे हुए महाभारत मे न हो और बाद के किसी लेखक ने जोडे हो ? महाभारत तथा पुराणो मे वर्णित अक्षय वट के आख्यान से प्रेरित होकर अनघ राघव के टीकाकार रुचिपति ने यद्यपि प्रयाग के उसी श्याम न्यग्रोध को अक्षय वट नाम दिया, तथापि प्रतीत होता है कि काव्य-गथो मे इस वृक्ष का नाम श्याम न्यग्रोध या श्याम वट ही रहा, अक्षय वट नही।

अमर कोश (५००-८०० ईस्वी पश्चात्) के नानार्थ वर्ग मे 'श्याम' शब्द आया है। अमर कोश के टीकाकार भानुजी दीक्षित (१६३० ईस्वी पश्चात्) ने इसकी व्याख्या मे मेदिनी कोश (१३०० ईस्वी पश्चात्) के उद्धरण से उसे प्रयाग का श्याम वट बताया है। हेम चन्द्र (१०८८-११७२ ईस्वी पश्चात्) को उद्धृत करते हुए भी भानुजी दीक्षित ने प्रयाग के वट को श्याम वट लिखा है—अक्षय वट नही।

गोस्वामी तुलसी दासजी (१५३२-१६२३ ईस्वी पश्चात्) ने प्रयाग के सगम पर उगे हुए बरगद को अक्षय वट नाम

है। उसके विशाल छत्र को उन्होने 'मुनियो के मन को मोहने वाला' बताया है।

अक्षय वट का शाब्दिक अथ है—'न क्षीण होने वाला बरगद।' बरगद वृक्षो मे सामान्य रूप से यह विशेषता होती है, जिस बरगद मे यह विशेषता अधिक हो, उसे 'अक्षय वट' कह देते थे। इस प्रकार का एक बरगद गया मे भी था। प्रयाग और गया दोनो के वट वृक्षो को अक्षय वट के नाम से हिन्दुओ ने अनेक शताब्दियो तक बडे आदर से देखा है। सस्कृत साहित्य मे प्रयाग तथा गया के अक्षय वट अधिक प्रसिद्ध रहे हैं। ब्रह्म पुराण (अध्याय १६१, ६६-६७) मे गोदावरी माहात्म्य के अन्तगत विन्ध्य के उत्तर मे एक अक्षय वट का उल्लेख है। ब्रह्म वैवत्त पुराण (अध्याय ३३, ३२-३३) मे नमदा के वट का वर्णन है, जहा पुलस्त्य ऋषि ने तप किया था।

महाप्रलय की कल्पना मे विपुल जल-राशि के बीच मे एक विशाल न्यग्रोध (बरगद) वृक्ष की विस्तीर्ण शाखा पर दिव्य शिशु विश्राम करते है। अपने पैर के अगूठे को वे मुख मे चूस रहे होते हैं। सवत्र जल भर जाने से स्थावर और जगम सभी कुछ नष्ट हो जाता है।

न्यग्रोध के पलग पर सोये हुए आदिपुरुष से ही पुन सृष्टि का आरम्भ होता है। महाभारत की इस कल्पना को प्रयाग तथा गया के अक्षय वट मे अन्तर्निहित कर दिया गया है। 'प्रयाग माहात्म्य शती' मे इसका विस्तृत वर्णन और माहात्म्य है। उसमे से कुछ स्थल हम सक्षेप मे यहा दे रहे है

"गगा और यमुना के सगम पर यह अक्षय वट स्थित है। यह महान् वट एक बडे आश्चय का वृक्ष है। सफेद और नीली गगा

और यमुना नदिया इसके चवर हैं और इसका छत्र इतना वडा है कि यह साक्षात् नीला आकाश बन गया है। वृक्षो का यह राजा धरती के सिर के आभूषण के समान विराजमान है। इस वट के नीचे शिव भी अपने ताण्डव से माधव को सन्तुष्ट करते हैं। हरित मणि के समान सुन्दर अक्षय वट की छाया देवताओ को भी हर्ष देती है। सब देवो और ऋषियो से समादृत इस वट मूल मे ब्रह्मा ने दस यज्ञ किये थे।

"माधव उतनी प्रसन्नता मे वैकुण्ठ मे नही रहते, जितनी प्रसन्नता से तीर्थ-राज के अक्षय वट पर रहते है। इस वट की रक्षा सदा शूलपाणि महेश्वर करते है। इसके मूल मे ब्रह्मा, बीच मे विष्णु और अग्र भाग मे शिव निवास करते है। महा-प्रलय के समय समस्त ससार के जलमय हो जाने पर माधव के सोने के लिए बरगदो का यह राजा पलग बना था। सब रूपो को समेटकर ब्रह्माण्ड को अपने पेट मे रखकर बालरूप धारण कर इस अक्षय वट पर वे सोते हैं। कल्प वृक्ष और इसके स्वरूप मे भेद नही। ऐसा वृक्ष ब्रह्माण्ड मे दूसरा नही है। इसकी पूजा करने से मनोरथ सिद्ध होते है। यात्रा पर आने वाले नर-नारी विशुद्ध चित्त से इसकी पूजा करने से अक्षय फल पाते है। सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा को जब सृष्टि बनाने की सामग्री नही मिली तो मनोकामना पूर्ण करने वाले इस अक्षय वट की उन्होने पूजा की।"

गया का अक्षय वट भी तीनो लोको मे प्रसिद्ध था। महा-भारत मे इसके अनेक उल्लेख आते हैं। कश्मीर के महाकवि क्षेमेन्द्र (१०२०-१०६० ईस्वी पश्चात्) ने गया के अक्षय वट का वर्णन किया है। वायु पुराण मे अनेक स्थलो पर इस वट

का उल्लेख मिलता है। इसके नीचे श्राद्ध करने और दान देने की बडी महिमा बताई गयी है।

सैकडो वरसो तक प्रयाग का अक्षय वट तीथ पुरोहितो की जादू-विद्या का चमत्कार मात्र रहा। अक्षय वट देखने के लिए इलाहाबाद के किले के भीतर जाना पडता था। यद्यपि किले के द्वार पर सन्तरी रहता था, परन्तु अक्षय वट का मन्दिर और वहा तक जाने का माग जनता के लिए खुला था। किले के द्वार से मन्दिर लगभग दो सौ मीटर की दूरी पर है। मन्दिर भूमि के अन्दर है। उसकी छत किले की भूमि के समतल मे है। अन्दर प्रकाश जाने के लिए मन्दिर की छत मे खुला स्थान छूटा है, जिसे चारा ओर घेरकर रोशनदान बनाया गया है। इस प्रकार मन्दिर मे धीमा प्रकाश पहुचता है। मन्दिर मे उतरने के लिए सीढिया है। कुछ पण्डे मन्दिर दिखाने का ही काम करते थे। वे दीपक जलाकर मूर्तिया और अक्षय वट अच्छी तरह दिखाते थे। भीतर बडा पुजारी अक्षय वट के पास बैठा रहता था। एक छोटा दीपक जलता रहता था। हाथ भर से कम व्याम का कुदा वहा जमीन से निकला हुआ दिखाई पडता था, जिसकी दो शाखाए होकर छत से जा मिलती थी। इसी को 'अक्षय वट' कहते थे। इसके अधिक भाग को कपडे से ढके रखते थे। सन् १९५३ मे 'लीडर' समाचार पत्र तथा अन्य पत्रो मे इस विषय पर बहुत वाद-विवाद छपा था, जिससे एक बात प्रत्यक्ष हो गई थी कि जल चढाते-चढाते जब मन्दिर मे रखा कुदा सडने लगता था, तो पुजारी रात के समय चुपके से सडे कुदे को निकालकर उसके बदले दूसरा कुदा रख देता था। प्रतिदिन नये आने वाले भक्तो और यात्रियो के सामने

तो यह सचमुच उस अक्षय वट के रूप मे प्रस्तुत किया जाता था, जिसका नाश प्रलयकाल मे भी नही होता। यदि कोई जिज्ञासु इसके छोटे आकार को देखकर विस्मय प्रकट करे तो पण्डे उसकी सतुष्टि यह कहकर करते थे कि चारो ओर से घिरा होने के कारण इसको न धूप लग पाती है और न पर्याप्त स्वस्थ हवा मिलती है, इससे इसकी वृद्धि अत्यन्त मन्द है।

कुछ लोगो का यह कहना है कि असली अक्षय वट जीता-जागता वृक्ष है, जो किले के मैदान मे अन्यत्र खडा है, परन्तु प्रतिद्वन्द्वियो का कहना है कि यह एक वहाना है, जिससे पूजा पुराने स्थान से उठकर नवीन स्थान मे होने लगे और नवीन पुजारियो को पैसे मिलने लगें। यदि इसे वही श्याम न्यग्रोध मान लिया जाय, जिसके नीचे सीता ने अजलिबद्ध होकर मगल की याचना की थी, तो सैकडा वर्षों के समय मे यह बहुत अधिक फैला हुआ होना चाहिए था। इसके वतमान आकार-प्रकार को देखकर इसे ह्यु एन्त्साग के समय (सातवी शती ईस्वी पश्चात्) का वह वृक्ष भी नही माना जा सकता, जिसके ऊपर से हिन्दू लोग कूदकर प्राण-त्याग किया करते थे। जो लोग इसे अक्षय वट वताते है, वे इसके छोटे रहने का कारण यह कहते है कि पहले जब यह खुली हवा मे था, तो नदी की बाढो से धीरे-धीरे इसके चारो ओर मिट्टी का भराव होता गया और इस तरह नई वनी भूमि के ऊपर वृक्ष का बहुत थोडा भाग ही शेष रहा। यदि यह कथन भी स्वीकार कर लिया जाय तो मानना पडेगा कि किला वनने के वाद से इस पर और अधिक मिट्टी नही चढी होगी। तब से अर्थात् लगभग साढे तीन सौ वर्षों मे यह ६१० मीटर से अधिक परिधि का पेड बन जाना चाहिए

था, क्योकि कलकत्ते का बरगद लगभग एक सौ सत्तर वर्षों मे प्राग २७३ मीटर की परिधि मे वढ गया था।

सवत् २०१२ मे शीतल प्रसाद मिश्र ने 'अक्षय वट' नामक पुस्तिका प्रकाशित की थी। इसमे प्रयाग के अक्षय वट के सम्बन्ध मे प्रचलित विश्वासो का वणन है। पिछले वर्षों प्रयाग के पत्रो मे इस विषय को लेकर जो विवाद चला, उसका उल्लेख भी इसमे है। प्रयाग के कतिपय प्रतिष्ठित महानुभावो के प्रयत्न से पाताऽपुरी के तथाकथित अक्षय वट का इस विवाद मे रहस्योद्घाटन हो गया है। पातालपुरी के कुन्दे को अक्षय वट न मानने वालो की विचारधारा इस प्रकार है

सन् १५७५ मे जव किले का निर्माण प्रारम्भ हुआ, तो हिन्दुओ की धार्मिक भावनाओ का आदर करते हुए लगभग सौ वष पुरानी एक शाखा को तोडकर शेष वृक्ष कटवा डाला गया। यह वृक्ष किले के दक्षिण-पूर्वी भाग मे चहारदीवारी मे था। इसका कुछ भाग तो दीवार के अन्दर आ गया, शेष भाग ठूठो के रूप मे खडा रहा। दीवार मे एक दरवाजा रख दिया गया, जिससे सवसाधारण इसकी पूजा सुविधापूवक करता रह सके। इसके निकट ही दीवार मे एक दरवाजा है। प्रतीत होता है कि अकबर बादशाह ने सवसाधारण को इसकी पूजा करने की सुविधा देने के लिए ही ऐसी व्यवस्था कर दी थी। इसमे किले के अन्दर जनसाधारण का कुछ दखल नही था और जनता दशन करके बाहर ही बाहर चली जाती थी। सभवत कुछ काल तक जनता को इसकी पूजा करने का अधिकार रहा। इस वक्ष के समीप ही शाही महल अवस्थित थे और बादशाह जब प्रयाग मे ठहरते थे, तो वे इन्ही महलो मे निवास करते थे।

अपने पिता के शासन के अन्तिम वर्षों मे जहागीर प्रयाग के किले मे लगभग पाच वर्ष रहे। शाही निवास स्थान के समीपवर्ती अक्षय वट तक जनता के अबाध रूप मे आने-जाने से अधिकारियो को असुविधा होती रही हो। इसलिए अकबर के शासनकाल मे ही इसकी पूजा बन्द कर दी गई।

इस प्रसग मे शाहआलम द्वितीय द्वारा सन् १७७२ मे दी गई एक सनद का उल्लेख महत्वपूर्ण है। राज्यारोहण के तेरहवें वर्ष मे वह सनद लिखी गई थी। इस सनद मे अयोध्यानाथ योगी को बादशाह अकबर द्वारा दी गई एक पुरानी सनद के आधार पर पातालपुरी मे अक्षयवट पर उनके अधिकार की परिपुष्टि की गई है।

इस सनद से प्रकट होता है कि अकबर के शासन-काल मे ही हिन्दुओ की धार्मिक भावनाओ की रक्षा के लिए पातालपुरी मन्दिर मे असली अक्षय वट की एक शाखा रोप दी गई थी और उसकी पूजा होने लगी थी। जब वह सूख गई, तो उसके स्थान पर नई शाखा रोप दी गई। पुजारी उसे हरा-भरा और पल्लवित रखने मे सफल नही रहे, जिससे बार-बार शाखा बदलने का क्रम चालू रहा। अक्षय वट के इस प्रकार क्षीण होने की बात को पुजारी लोग जनता पर प्रकट करना अपनी विलता समझते थे। इससे शाखा को बदलने की क्रिया वे एकान्त देखकर रात्रि के अधेरे मे करते थे। तत्कालीन मुगल या अग्रेज सैनिक अधिकारियो की अनुमति से यह बडी शाखा बदली जाती थी। अग्रेजो ने इस पातालपुरी मन्दिर के रहस्य की पूर्णतया रक्षा की। तीसरे-चौथे साल जब यह शाखा सड जाती, तो उसे बदलने का कार्य अग्रेज सैनिको के निरीक्षण मे रात को चुपके

से किया जाता। अंग्रेजों के भारत से चले जाने के बाद किला भारतीय सैनिकों के अधिकार में आ गया। भारतीय सैनिकों की अनुमति से २० जून १९५१ को शाखा बदली गई। चौबीस जून १९५१ के 'दैनिक लीडर' और 'भारत' में इस घटना का समाचार इस प्रकार छपा

"इलाहाबाद २३ जून। इलाहाबाद के किले में भूगभस्थ पातालपुरी मन्दिर में अक्षय वट के रूप में जिस पुराने तने की पूजा की जाती थी, उसके स्थान पर एक नई शाखा स्थापित की गई है। प्राप्त सूचना के अनुसार तथा जिसकी पुष्टि सरकारी माध्यम द्वारा हो चुकी है, यह कहा गया है कि मन्दिर के प्रधान पुरोहित ने अधिकारियों से लिखित प्रार्थना की थी कि यह शाखा बहुत पुरानी हो गई है, और इसके स्थान पर नई शाखा स्थापित करने की आज्ञा दी जाय। धार्मिक भावनाओं को ठेस न पहुचाने के उद्देश्य से और पुजारियों के रिवाज न टूटने के विचार से उन्हें शाखा-परिवर्तन की आज्ञा दे दी गई। छत्तीस पण्डों तथा बीस मजदूरों ने उसी ढंग के एक वृक्ष की शाखा लाकर उस स्थान पर स्थापित कर दी। यह कार्य अंधेरी रात को आठ बजे सम्पन्न किया गया। इस अवसर पर पुरोहित ने किले के भीतर के व्यक्तियों को तथा त्रिवेणी तट के व्यक्तियों को प्रसाद वितरित किया।"

इससे यह तो स्पष्ट हो गया कि इस बरगद-काण्ड को इसी प्रकार राजकीय अधिकारियों की अनुमति से दीर्घकाल से समय-समय पर बदला जाता रहा है।

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के बाद १८६० में अंग्रेजी पढ़े लिखे एक बंगाली भोलानाथ चन्द्र ने जो तीर्थ-यात्राएं कीं, उसका

विवरण 'एक हिन्दू की यात्राए' (१८६६ मे प्रकाशित) नामक पुस्तक मे है। उनके वृत्तान्त से पता चलता है कि पातालपुरी का मन्दिर भी कुछ वर्षों तक जनसाधारण के दर्शन के लिए बन्द था और सैनिक अधिकारी उसे कोयला आदि भण्डारित करने के काम मे लाते थे। वट का वृत्तान्त उन्होने इस प्रकार दिया है, "दो नोक वाला सूखा वृक्ष दिखलाई पडा, जिसका सूखा हुआ तना कई सौ वर्षों से वहा विराजमान है। यही अक्षय वट या अमर वट है, जिसमे आज भी रस तथा जीवन तत्त्व है।"

पातालपुरी मन्दिर सभवत सन् १८४५ के लगभग जनता के लिए बन्द कर दिया गया और बाबू भोलानाथ चन्द्र के अनुसार लगभग १८६५ या १८६६ मे खोल दिया गया।

पातालपुरी मन्दिर मे किसी वट काण्ड की अक्षय वट के रूप मे पूजा की सम्पुष्टि हमे अनेक यात्रियो के द्वारा मिलती है। एक डच धर्मी प्रचारक टिफेन थाल्र १७६५ की फरवरी और सितम्बर मे इलाहाबाद आये थे। भारत के भूगोल-विषयक उनकी जर्मन भाषा मे लिखी पुस्तक का फ्रासीसी मे अनुवाद हुआ। वे बताते हैं कि इसकी शाखाए दो समान भागो मे विभक्त है। इसमे पत्तिया नही हैं, फिर भी इसमे रस है और यदि चाकू से काटा जाता है तो इसमे एक प्रकार का दूध निकलता है। जेम्स फोर्ब्स ने १८ अगस्त, १७८५ को इलाहाबाद का किला देखा। उन्होने पातालपुरी मन्दिर मे इस आश्चर्यमय वृक्ष को देखा था। जनरल कनिंघम का पुरातत्त्व सम्बन्धी प्रतिवेदन (१८६५) बताता है कि "यह छायाहीन वट-वृक्ष आज भी प्रयाग मे पूजा जाता है। यह वृक्ष आज भी ... के भीतर एक ओर स्थित है या एक स्तम्भ के पास है"

डोसन सैण्डहस्ट स्टाफ कॉलेज मे उच्च सैनिक अधिकारी थे। उन्होंने (१८६७) लिखा है कि वृक्ष की शाखा अब भी है और उसी प्रकार पवित्र है तथा इलाहाबाद के किले के भीतर पातालपुरी मन्दिर के समीप मन्दिर के घेरे मे होने के कारण बाहर से दृष्टिगोचर नही होती।

जी०एच० खाण्डेकर ने १८९४ मे पातालपुरी मन्दिर मे अक्षय वट के ठूठ की पूजा देखी थी।

प्रयाग के कुछ प्रतिष्ठित महानुभावो ने सन् १९५० मे किले के अन्दर असली अक्षय वट की खोज आरम्भ की। किले के दक्षिण पूर्व कोने मे उन्हे कूडे-करकट के ढेर मे दबे हुए वट वृक्ष के कुछ ठूठ मिले। वनस्पतिशास्त्र मे वृक्षो की आयु उनके वलयो(ग्रोथ रिंग्स) की परिगणना करके निश्चित की जाती है। इस पद्धति का आश्रय लेकर प्रयाग विश्वविद्यालय के औद्भिदी के प्राध्यापक ने किले के सैनिक अधिकारियो की प्रार्थना पर उन ठूठो की परीक्षा की। उनकी परीक्षा बताती है कि नये खोजे हुए अक्षय वट मे मुकुट तथा ऊपर की शाखाओ को शक्ति देने के लिए खम्भे के रूप मे उसकी लम्बी जडे है। बहुत-सी इनमे ऊपर से आई हुई जडे है, जैसी कि वटवृक्ष मे होती है। इन मे से वृक्ष की एक बडी मुख्य शाखा वर्तमान भूस्तर से १.८० मीटर की ऊचाई पर काटी हुई प्रतीत होती है। ऊपर के चिह्नो से यह बहुत प्राचीन लगती है। चिह्न के नीचे मुख्य तने मे बहुत सी ऊपर से आई हुई जडे लिपटी हुई हैं और बहुत-सी शाखाए इनमे निकली हुई है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसकी बहुत-सी शाखाओ के तने काटे गये हैं।

मुख्य तने मे चार सौ वार्षिक वलय-चिह्न है तथा मुख्य तने

के शेष भाग मे लगभग सौ वलय-चिन्ह है। इस तरह मुख्य तने मे लगभग पाच सौ वलय-चिह्न है। पास की शाखाओ मे इसी तरह के वार्षिक वलय-चिह्न दो सौ है। प्रत्येक वलय की चौडाई के अनुसार भी गणना की गई और उक्त वलय चिह्न ठीक पाये गए। अत ऐसा प्रतीत होता है कि वृक्ष कटने के समय मुख्य शाखा लगभग पाच सौ वष पुरानी थी। शाखाओ की स्थिति का ध्यान रखते हुए कहा जा सकता है कि मुख्य तना लगभग ढाई सौ वर्ष पूव काट दिया गया हो।

जहागीर जब किले मे निवास कर रहा था उसे अक्षय वट के विषय मे बतलाया गया। उस समय वृक्ष की केवल एक शाखा थी। उसका कुतूहल वढा। उसने लोहे का एक बडा तवा वनवाया। वह वृक्ष काट डाला गया और उस पर लोहे का तवा रखकर आग जला दी गई। आग कई दिन जलती रही। कुछ समय के बाद जले हुए वृक्ष मे से फिर नई शाखाए फूटी तो बादशाह चकित हो गया। इम्पीरियल गजेटियर मे भी जहागीर द्वारा अक्षय वट को जलाने की बात लिखी है। नये खोजे गये वृक्ष पर जलाये जाने के चिह्न भी है।

ह्यु्एन्त्साग (सातवी शती ईस्वी पश्चात्) के भ्रमण-वृत्तान्त मे प्रयाग का अक्षय वट मौत का पैगाम देने वाला पेड वन गया है। इसके नीचे वह मनुष्यो की हड्डियो का ढेर देखता है। पेड के ऊपर से कूदकर जो लोग अपने प्राण विसजन करते थे, उनकी देहो को नरभक्षी राक्षस खा जाते थे और हड्डिया का ढेर वहा छोड देते थे। धार्मिक भावनाओ मे प्रेरित होकर आत्म धात करने के इरादे से लोग उसके ऊपर चढ जाते और अपने विश्वासो के आधार पर उन्हे दीखना कि

स्वर्गीय ऋषि वायुमण्डल मे बाजे बजाते हुए उन्हे बुला रहे है। ऐसे पुनीत स्थान से गिरकर प्राण त्यागना धन्य समझा जाता था। स्त्रियो की सती प्रथा से इस प्रथा की तुलना की जा सकती है। ह्यु एन्त्साग के अनुसार वट से कूदकर प्राणोत्सग करने की यह प्रथा बहुत पहले से प्रचलित थी। 'शब्द रत्नावली' मे वट का एक नाम 'यमप्रिय' भी मिलता है।

ह्यु एन्त्साग के कथन का समथन हमे पौराणिक साहित्य मे अनेक स्थलो पर मिल जाता हे।

'प्रयाग माहात्म्य शताध्यायी' मे कहा गया है कि मरने के बाद जो अपनी उत्कृष्ट गति चाहता है, उसे इस वट के नीचे स्वेच्छा मे या अनिच्छा से शीघ्र ही प्राण त्याग देना चाहिए।

कम पुराण के अनुसार इस वट मूल के नीचे प्राण त्यागने वाले स्वग लोक से भी ऊपर रुद्र लोक मे जाते ह। पद्म पुराण और मत्स्य पुराण ने भी इस मान्यता का समथन किया है।

पुरानी दीवारो तथा वृक्षो पर पक्षियो द्वारा गिराये बीजो से सामान्यतया बरगद का पेड प्रकट होता है। किसी पक्षी द्वारा निकाला गया बीज पहले किसी पेड पर टिकता है। वही पर जम जाता है इसकी लम्बी जडें निकल आती है, जो शीघ्र ही मोटी तथा मजबूत हो जाती हैं और अन्त मे आसरा देने वाले उस पेड का दम घोट देती हैं। दूसरो का विनाश करके जीने वाला पेड भला पवित्र क्यो होगा ? जीव-जन्तुओ को शीतल छाया तथा सुखद आश्रय देना और असख्य कीडो, पक्षिया, पशुओ तथा प्राणिया को भरपूर भोजन प्रदान करना—सम्भवत ऐसे उपकारी कार्यों के कारण ही यह हिन्दू धम में पवित्र माना जाता है। बहुत-से धार्मिक अनुष्ठानो का इस वृक्ष के साथ सम्बन्ध

है। सूखी शाखाए पवित्र समझी जाती है और यज्ञाग्नि मे समिधाओ के रूप मे काम आती है। सुजाता ने तपस्वी सिद्धार्थ को बरगद का देवता समझ कर खीर-दान की थी।

वड और पीपल दोनो ही मकानो को बहुत हानि पहुचाते हैं। बरगद तो मकानो का सबसे बडा दुश्मन समझा जाता रहा है। पक्षियो द्वारा गिराये गये बीज जहा-तहा छतो और दीवारा पर जम जाते है। वाल पौधो की जडें ईंटो या पत्थरो की चिनाई के बीच मे से अपना मार्ग बनाती ह। जडो का फन्दा इतना मजबूत होता है कि उससे छुटकारा पाना लगभग असम्भव होता है। अन्त मे ये मकान को तहस-नहस कर डालती है। बरगद का सस्कृत मे सबसे प्रसिद्ध नाम 'वट' है, जो जडो के इस गुण को भलीभाति सूचित करता है। वट शब्द का अर्थ है, 'वह वृक्ष, जो अपनी जडो से दूसरो को अच्छी तरह लपेट ले।'

हिन्दुओ के धार्मिक विश्वास ऐसी अवाञ्छनीय स्थितियो मे भी उगे हुए पौधो को नष्ट करने से रोकते है, क्योकि पवित्र होने से वे इसे कभी नही काटते। कई बार तो जगल के अधिकारियो को भी बरगद के पेड कटवाने के लिए मजदूर मिलने कठिन हो जाते है। १७७१ मे मिलिटरी के एक इजीनियर थॉमस मार्स्डेन ने अपने सस्मरणो मे एक अजीब आपबीती लिखी थी। वे लिखते है, "त्रिपलासोर के किले पर एक सैनिक कार्य का निर्माण कराने के लिए मैं नियुक्त था। बरगद के एक पेड को कटवाना आवश्यक हुआ। वहा के ब्राह्मण इसमे इतने उत्तेजित हो गये कि उन्होने मुझे विष देने की ठान ली।" इस प्रकार इस इजीनियर को अकाल मे ही मौत की झाकी मिल गई।

ताड और खजूर के वृक्षो पर लिपटे हुए बरगद और पीपल

के पेड अक्सर दीख पडते है। इसका कारण यह है कि इनके पत्तो के आधार पर एक प्राकृतिक प्याला सा बना होता है, जिसमे बीज को टिकने और उगने मे अनुकूलता होती है। अन्त मे ये आश्रयदाता को जकड कर मार डालते है और अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर लेते है। कलकत्ता की राजकीय वनस्पति वाटिका मे ससार के सबसे महान् वटवृक्षो मे से जो बरगद खडा है, वह भी कहते हैं कि इसी तरह एक खजूर के पेड पर १७८२ मे पैदा हुआ था। इसकी परिधि अब २७० मीटर तक फैल चुकी है। इसके बीच का असल तना बहुत साल हुए मर गया था। मुख्य तने के बिना ही यह बरगद अब भी केन्द्र से बाहर की ओर फैल रहा है। इससे प्रतीत होता है कि जटा के जमीन मे गड जाने के बाद प्रत्येक बडी शाखा और उसकी जटा मिलकर एक स्वतन्त्र वृक्ष बन जाते हैं, जिन्हे अपने पैदा करने वाले तने से भोजन लेने की विशेष आवश्यकता नही होती।

कलकत्ते वाले पेड से भी बडे बरगद के वृक्ष भूत काल मे कई जगहो पर खडे थे। आन्ध्र घाटी मे एक प्रसिद्ध वृक्ष छह सौ दस मीटर की परिधि मे फैला हुआ था, जिसके तीन हजार से अधिक तने या जटाए थी। इसकी छाया के नीचे बीस हजार लोग पडाव डाल सकते थे। हमारे देश के दसियो गावो की आबादी को मिलाने से कही इतनी बडी सख्या बनेगी। पहले जमाने मे जगलो के अन्दर रहने वाली यक्ष, गन्धर्व आदि जातिया वास्तव मे वट वृक्षो को घर बनाकर रहती थी। सस्कृत साहित्य मे इसीलिए बरगद को 'यक्षावास', 'यक्ष वासक' तथा 'यक्ष तरु' कहते है। अग्रेजी के एक कवि बेन जॉनसन (१६२४) ने

सारे वृक्ष को एक ऐसी ड्योढी के सदृश समझा है, जो कई सेनाओ की छावनी बन सकता है। एक सेना के कूच के समय कबीर वड ने सात हज़ार आदमियो को शरण दी थी।

नर्मदा का बरगद ऐतिहासिक सस्मरणो का वृक्ष बन गया है। विदेश से आने वाले यात्रियो के लिए यह वडे कुतूहल की चीज़ थी। यूरोपियन उसके नीचे समूचा दिन बिताने मे आनन्द मनाते थे। हमारे देश मे रहने वाले यूरोपियन शासक उसकी शीतल छाया, विशालता और भव्यता का निमन्त्रण स्वीकार करते थे और अपने आमोद-प्रमोद के समयो मे वहा जाते थे। इसके सौन्दर्य पर कवि इतने मुग्ध थे कि इसकी प्रशसा मे अग्रेजी मे अनेक कविताए लिखी गई। शुरू-शुरू की इग्लिश रीडरो मे इस महावृक्ष पर एक पाठ था। भरुच से कोई बीस किलोमीटर उत्तरपूर्व मे नमदा के एक टापू मे यह खडा था। अप्रैल १८२५ मे हेबर नामक पादरी ने इसे ससार के सबसे वडे कुजो मे गिना था, यद्यपि तब यह नर्मदा की बाढो मे बहुत कुछ बहाया जा चुका था। १८३४ मे फोर्ब्स ने अपने 'प्राच्य सस्मरणो' मे इसके बारे मे लिखा था, "इस असाधारण वृक्ष के बडे भाग को ऊची बाढो ने बहा दिया है, परन्तु अब भी जो कुछ वहा बचा है, वह परिधि मे छह सौ दस मीटर के आसपास है। मुख्य तने के चारो ओर की दूरी का यह नाप है। इसके नीचे शरीफे तथा दूसरे फलो के बहुत से पेड उगे हुए है। इस एक ही पेड के बडे तने साढे तीन सौ हैं और छोटे तनो की सख्या तीन हजार से ऊपर है।" फोर्ब्स का यह वर्णन टूटे-फूटे पेड का है। जब यह साबूत रहा होगा तो कल्पना कीजिए कि आन्ध्र घाटी वाले बरगद से कितना विस्तृत होगा और कितने

अधिक लोगो तथा पशु-पक्षियो को आश्रय और भोजन देता होगा।

नमदा के इस बरगद के बारे मे वहा एक जनश्रुति प्रसिद्ध है। कहते है कि सन्त कबीर ने एक दिन दात साफ करके दातुन को जमीन मे गाड दिया। अचानक वह जड पकड गई और इस विशाल रूप को धारण कर गई। १६७२ मे लिखे वृत्तान्तो से पता चलता है कि उन दिनो भी इस कबीर वड की बाकायदा पूजा होती थी।

पेड-पौधो की दुनिया मे पत्तो का सबसे बडा मुकुट भारतीय वटवृक्ष का होता है। इतना विशाल और विस्तृत पेड अपनी भारी-भरकम शाखाओ के बोझ को कैसे सभाले? प्रकृति ने इसका प्रबध एक कुशल इजीनियर की तरह किया है। शाखा जब बडी हो जाती है,तो उसमे से एक जटा या जड लटक जाती है, जो नीचे की ओर बढती हुई जमीन में धस जाती है। शाखा के बोझ को सभालने मे यह एक खम्भे का काम करती है। इन जटाओ से बने खम्भो का एक घेरा मुख्य तने के चारो ओर बन जाता है। शाखा जब और आगे बढती है और अपना भार सभालने में अपने को असमर्थ पाती है तो फिर एक जटा छोड देती है जो पहले की तरह धरती तक पहुच जाती है। इस प्रकार खम्भो के एक नये घेरे की सृष्टि हो जाती है। धरती मे पहुची हुई जटाए मुख्य तने से बहुत दूर चली गई शाखाओ को सीधा पोषण देना आरम्भ कर देती हैं। दीर्घ और भीमकाय हजारो शाखाओ को मुख्य तना ठीक तरह खुराक पहुचाने मे असमर्थ था, इसलिए यह नया प्रबन्ध बडा सन्तोषजनक रहता है। शाखाओ के बढने का तथा जटाए छोडने का क्रम कभी समाप्त

नही होता । इस प्रकार यह वृक्ष अपना असीमित विस्तार करता जाता है।

शाखाए और पत्ते ढोरो के लिए अच्छा चारा है। हाथी के चारे के लिए पत्तो का कभी कभी उपयोग होता है। फरवरी और मई के बीच मे फल पककर चमकीले लाल हो जाते है। पक्षी, चिमगादड और हिरण आदि जगली पशुओ की मुहमागी दावत का यह सुनहरा अवसर होता है। कहते है कि घोडो के लिए ये विषैले होते है।

असमी लोग बरगद से एक प्रकार का कागज बनाते है। बरगद के दूध मे चौथाई भाग सरसो का तेल मिलाकर पकाने से एक लेस बन जाता है, जिसे चिडीमार पक्षियो को पकडने के काम मे लाते है। मुख्य तने की लकडी इतनी पक्की नही होती। पानी के अन्दर यह टिकाऊ रहती है, इसलिए कुओ मे इसे बरत लेते है। जटाओ की तथा जटाओ मे बने तना की लकडी कुछ अधिक कठोर होती है। तम्बुआ की टेकनो, पालकियो और बेहगियो के डण्डो और छतरियो के हत्थो के लिए इसकी लकडी विशेष रूप से पसन्द की जाती है।

पत्तो को तेल से चुपडकर सेककर फोडो और सोजो पर बाधते है। पैरो मे जब बिवाइया फट गई हो तो बरगद के दूध को उनके अन्दर भर देने से आराम आ जाता है। सडे हुए दाता मे यह दूध भरने से पीडा शान्त होती है। ०
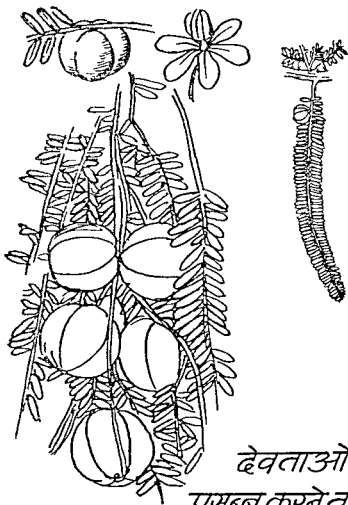
देवताओ को प्रसन्न करने वाला
आंवला

आवले के वृक्ष के बारे मे एक पौराणिक गाथा इस प्रकार प्रसिद्ध है

भगवती और लक्ष्मी एक बार तीर्थयात्रा को निकली। भगवती ने लक्ष्मी से कहा, "देवि ! आज मैं स्वकल्पित किसी नवीन द्रव्य से, हरि की पूजा करना चाहती हू।" लक्ष्मी ने उत्तर दिया, "त्रिलोचन को भी किसी नए पदाथ से पूजने की हमारी इच्छा है।" फिर दोनो की आखो से निर्मल अश्रुजल भूमि पर गिरा। उसी से माघ शुक्लपक्ष की एकादशी को आवले की उत्पत्ति हुई। इस वृक्ष को देखकर देव और ऋषि आनन्दोल्लसित हो उठे। तुलसी और विल्व के समान ही आवला पवित्र माना जाता है। इसके पत्तो से शिव और विष्णु दोनो की पूजा होती है। माघ मास की एकादशी को इसकी उत्पत्ति होने के कारण उस दिन इससे विष्णु देव की पूजा करने से देव प्रसन्न होते है।

यह कथा गरुड पुराण के २१५वें अध्याय मे विस्तार से लिखी गई है। पुराणकार ने इसमे माघ मास के साथ आवले का विशेष सम्बन्ध स्थापित किया है। मैंने इस पर आयुर्वेदिक दृष्टि से विचार किया और माघ मास मे आवले के महत्त्व को जानना चाहा। नवम्बर मे आवला बाज़ार मे बिकने आ जाता है। प्राय मार्च के अन्त तक बिकता रहता है और उसके बाद हरे आवले का मौसम समाप्त हो जाता है। मौसम के अन्तिम दिनो मे आवले को 'चैती आवला' कहते है। मौसम के आरम्भ काल नवम्बर मे जो आंवला बिकता है, वह रस और वीय से सम्यक्तया भरपूर नही होता। माघ मे जाकर यह

पकने लगता है और आधे चैत्र तक यह इसी अवस्था मे रहता है। यही काल ह, जिसमे आवले के अन्दर रसायन और शक्ति देने वाले गुणो का बाहुल्य होता है। माघ मास मे आवले के अन्दर गुणो का परिपाक होने लगता है। हमारी सम्मति मे इसीलिए पुराणकार ने इस मास के साथ आवले के विशेष महत्व का प्रतिपादन किया है। वृक्ष के प्रति पूज्य भाव होने से लोग इसको भलीभाति सीचते रहेगे, जिससे फलो को आवश्यक पोषण मिलता रहेगा।

बहुत दिनो से आवले ने लोकोक्ति मे स्थान प्राप्त कर लिया है। सस्कृत के 'हस्तामलकवत्' मुहावरे का हम दैनिक भाषा मे बहुत प्रयोग देखते ह। तुलसीदास ने भी इस मुहावरे का प्रयोग किया है—"जानहि तीनि काल निज ज्ञाना। करतलगत आमलक समाना।"

घरेलू चिकित्सा मे अनुमान से औषधि लेने के लिए आवले को परिमाण मान लिया करते थे। बच्चो को दी जाने वाली दवा का परिमाण बताते हुए कश्यप ने लिखा है कि विडग से बढाते हुए आवले से अधिक मात्रा मे औषधि नही दी जानी चाहिए।

कौटिल्य (३२१-२९८ ईस्वीपूव) ने आवले को खट्टे फलो मे गिनाया है। इसका सिरका भी बनाया जाता था। वैशम्पायन ने राजा शूद्रक को बताया था कि उसने पके आवले के फलो को जी भरकर स्वाद से खाया है।

हुएनत्साग (६२९-६४५) ने लिखा है कि पुछ (कश्मीर) मे ईख भी बहुत होती है परन्तु अगूर नही होते। आवला, गूलर और मोच इत्यादि फल अच्छे तथा अधिक बोए जाते है।

इनके जगल-के-जगल लगे हुए है। इनका स्वाद बहुत उत्तम होता है।

मलक्का नदी और नगरका नाम, विश्वास किया जाता है कि सस्कृत के मून शुद्ध आमलक से निकला है। पश्चिम मलयेशिया मे मदोएरा के पूव तक यह नाम सामान्य रूप से व्यवहृत होता है।

चरक बताते है कि इस रसायन को सेवन करने वाला एक साल तक केवल दूध पर निर्वाह करता हुआ, गौओ के बीच मे रहे और वहा जितेद्रिय ब्रह्मचारी रहता हुआ मन मे गायत्री मत्र का ध्यान करता रहे। एक साल बाद पौष, माघ और फाल्गुन की किसी शुभ तिथि मे प्रयोग आरम्भ करे। प्रयोग से पूव तीन दिन उपवास करे, फिर स्नान आदि से शुद्ध होकर आवले के वन मे किसी बडे फल वाले आवले के वृक्ष पर चढकर, शाखा मे लगे हुए फल को हाथ से पकडकर 'ओम' का जप करे। तब आवले को खाए। जितने आवले खायगा वह उतने ही हजार साल युवा होकर जीवित रहेगा। यदि भर पेट खाकर तृप्त हो जाय तो अमर सदृश ही हो जाता है अर्थात् उसकी आयु बहुत दीघ हो जाती है और कान्ति, लक्ष्मी, वेद और सरस्वती स्वय उस मनुष्य के पास उपस्थित हो जाती है।

भारतीय चिकित्सा मे आवला एक महत्त्वपूर्ण पदाथ है। प्राचीनतम लेखक चरक, सुश्रुत से लेकर आधुनिक लेखको तक ने इसे बहुत महत्त्व दिया है। अनेक योगो मे यह महत्त्वपूर्ण भाग लेता है और बहेडे तथा हरड के साथ मिलाकर त्रिफला के रूप मे प्राय सब रोगो मे विभिन्न रूपो मे प्रयुक्त किया जाता है। ताजा फल तृषाशामक, मूत्रल और अनुलोमक होता है।

शुष्क फल ग्राही और पाचक होता है। फूल शीतल और सारक होते हैं। छाल मे पके फल की ग्राहकता होती है।

हकीम लोग इसे आयुर्वेदिक चिकित्सकों की तरह प्रयोग करते हैं। इसे ग्राही, तृषाशामक, हृद्य और शरीर के दोषो को शुद्ध करनेवाला समझते हैं। शीतल और ग्राही गुण के कारण वे इसे बाह्य प्रयोग मे भी काम लाते हैं।

आवले का रसायन के रूप मे उपयोग करने के विषय मे राजा भोज लिखते है, "आवले के चूर्ण को घी, शहद और तेल मे मिलाकर एक महीने तक खाने से वाक्पटुता, शरीर मे कान्ति और नवयौवन आता है।"

आवले के चूर्ण को पानी, घी या शहद के अनुपान से रात्रि मे सेवन करते रहने से उदराग्नि बढती है, नाक, कान तथा आख स्वस्थ रहते है और जवानी प्राप्त होती है। बुढापे के प्रभाव से बचने के लिए आवले के रस मे शहद, मिश्री और घी मिलाकर सेवन करना चाहिए।

गरुड पुराण के अनुसार इसके पानी से स्नान करते रहने से स्वस्थ रहता हुआ मनुष्य सौ साल तक जीवित रहता है। उसके बाल सफेद नही होते। पुराणकार आवले मे सदा लक्ष्मी का निवास मानते है।

शारीरिक और मानसिक दृष्टि से निबल बच्चो को छह से बारह ग्राम च्यवनप्राश प्रतिदिन प्रात काल गाय के दूध से सेवन कराया गया है और आश्चयजनक परिणाम देखे गये है। कॉडलिवर आयल(मछली का तेल)की अपेक्षा बच्चा के लिए यह अधिक सात्म्य पडता है। अरुचिकर गन्ध और स्वाद के कारण मछली के तेल से उत्पन्न होने वाले, जी मिचलाना आदि

लक्षण च्यवनप्राश के सेवन से नही उत्पन्न होते ।

पित्त प्रकोप के कारण मुह मे छाले पड गए हो या मुखपाक हो, तो मूल की छाल को घिसकर शहद से लेप करने से लाभ होता है। पत्तो के कषाय से गरारे करने से भी आराम आ जाता है। आवले और पिप्पली को डालकर पकाई हुई खिचडी गले के रोगो के लिए हितकर होती है ।

जिन बच्चो के दात कमजोर हो, ठीक न निकले हो, बहुत भगुर हो या शीघ्र ही कीडो से खाए जाते हो, उन्हे रोज ताजे आवले खिलाने चाहिए या इसके च्यवनप्राश आदि योग नियम से सेवन करने चाहिए। आवलो को चबाने या दातो पर घिसने से दन्त-रोगो मे लाभ होता है।

आवले मे जितनी अधिक मात्रा मे खाद्योज(विटामिन) सी रहता है, उतना सम्भवत किसी अन्य फल मे नही। ताजे आवले के रस मे नारगी के रस की अपक्षा बीस गुना अधिक 'सी' विटामिन रहता है। एक आवले मे डेढ दो सतरो (बडी नारगी) के बराबर रहता है। प्रति सौ ग्राम आवले मे ६०० मिलीग्राम रहता है।

फलो और सब्जियो को गरम करने, पकाने या सुखाने से उनके खाद्योज का अधिकाश या प्राय सम्पूर्ण अश नष्ट हो जाता है। परन्तु आवला इस विषय का अपवाद है। पकाने पर भी इसका सब खाद्योज नष्ट नही होता। इसके तीन कारण हैं। एक, आवले मे इतना खाद्याज 'सी' रहता है कि कुछ नष्ट होने पर भी काफी खाद्योज बचा रह जाता है। दूसरे, आवले मे खटास होती है और खटास खाद्योज 'सी' की बहुत कुछ रक्षा करती है, उसको नष्ट नही होने देती। तीसरे, आवले मे कुछ

अन्य पदार्थ भी है, जो खाद्योज 'सी' की कुछ रक्षा कर सकते है। इसीलिए आवले के मुरब्बे मे भी कुछ खाद्योज 'सी' रह जाता है। आवले को सुखाकर रखने से भी बहुत-कुछ खाद्योज 'सी' बचा रहता है।

आवला चूर्ण से बनी टिकिया फौजी सिपाहियो को खाद्योज 'सी'प्रदान करने के काम मे आती ह।१९१४-१८ की लडाई में मेसोपोटेमिया तथा अन्य क्षेत्रा मे, जहा हरी साग-सब्जियों की कमी थी या जहा वे मिल ही नही सकती थी, अनेक सिपाहियो को स्कर्वी रोग हो गया था। पिछले समर मे आवला चूर्ण की टिकियो के प्रयोग के कारण कही भी स्कर्वी न हो पाया और इस प्रकार सैनिको का स्वास्थ्य सुरक्षित रहा। सन १९४० मे जब हिसार के दुर्भिक्ष से आक्रान्त क्षेत्र मे स्कर्वी प्रचण्ड रूप धारण कर रहा था, तब ताजा आवला इस रोग का अचूक इलाज सिद्ध हुआ था।

भारत सरकार की रिपोर्ट (हेल्थ बुलेटीन नम्बर २३) मे आवले की भोजन सम्बन्धी उपयोगिता को बताते हुए इसमे *निम्नलिखित द्रव्यो का सघटन बताया गया है*

प्रोटीन ० ५ प्रतिशत, वसा(ईथर एक्स्ट्रैक्टिव्स)० १ प्रतिशत, खनिज पदार्थ ० ७ प्रतिशत, रेशे ३ ४ प्रतिशत, कर्बोदित (कार्बोहाइड्रेट्स) १४ १ प्रतिशत, चूना (कैल्शियम) ० ०५ प्रतिशत, प्रस्फुरक ० ०२ प्रतिशत, जलीयाश ८१ २ प्रतिशत।

प्रति सौ ग्राम मे लोहा १ २ मिलीग्राम होता है। प्रति सौ ग्राम मे ऊष्मा उत्पन्न करने की क्षमता ५९ प्रतिशत है। प्रति औस (अठाईस ग्राम) मे ऊष्मा इकाइया सत्रह होती है। ०

राजकुलो और
तपस्वियों द्वारा आदृत

अशोक

वराह मिहिर ने अशोक को शुभ वृक्षों मे गिना है। उसके अनुसार अशोक, नीम,पुन्नाग, शिरीष और प्रियगु—ये वृक्ष मगलकारी हैं। इसलिए बाग मे अथवा गृहोद्यानो मे पहले इन्हे रोपना चाहिए। याज्ञवल्क्य स्मृति मे राजा को उस स्थान मे निवास करने की सलाह दी गई है, जो रमणीय है, पशु और जीवन के लिए आवश्यक चीजे जहा मिल जाती हैं। विज्ञानेश्वर (१२ वी शती) ने रमणीय की टीका मे लिखा है, "अशोक, चम्पक आदि से जो रमणीय बना हुआ है।" इससे प्रतीत होता है कि बारहवी शती तक भी राजप्रासादो मे अशोक को आदरणीय स्थान प्राप्त था। विश्वास किया जाता है कि गौतम बुद्ध (छठी शती ईस्वी पूर्व) अशोक वृक्ष के नीचे पैदा हुए थे। इसलिए बौद्ध इसे पवित्र मानते हैं। दुर्गा पूजा के महोत्सव मे अशोक के पत्तो का प्रयोग किया जाता है। मन्दिरो को सजाने के लिए और मगलोत्सवो मे मडपो के अलकरण मे इसके फलो तथा पत्तो को खूब पसन्द किया जाता है। बौद्ध और हिन्दू मन्दिरो के पास यह वृक्ष रोपा जाता है, क्योंकि इसके फूल धार्मिक कृत्यो मे समर्पित किये जाते है।

राजा अग्निमित्र के प्रमद वन मे अशोक वृक्ष उगाए हुए थे। उनकी शीतल घनी छाया मे पत्थर की चौकिया बिछी रहती थी। प्रमद वन मे मालविका अशोक वृक्ष की ठण्डी छाया मे पत्थर की पाटी पर बैठी हुई जी बहला रही थी। बकुलावलिका ने अशोक की छाया मे बैठी हुई मालविका के पैर रगे थे। राजप्रासादो की इस चहल-पहल से दूर तापसो के आश्रमो के पुनीत वातावरण मे हमे अशोक की सौम्यता आकृष्ट करती

है। विन्ध्याटवी मे पम्पा सरोवर के निकट आश्रम मे मुनि जनो, तापस कुमारियो, हरिण शिशुओ और मुनि कुमारो से सेवित जावालि ऋषि रक्तशोक की छाया के नीचे पवित्र भूमि पर बैठे मिलते है। लाख जैसे लाल रग वाले पत्तो से और अभिनव फूलो के उपहार से वह वृक्ष रमणीय बना हुआ था।

सुन्दर वृक्ष होने से इसे पथ-वृक्षो के रूप मे सडको पर और घरो, गावो तथा पार्को मे लगाने के अधिक प्रयत्न किए जाने चाहिए। उत्तर भारत मे यह बहुत कम मिलता है। इसलिए वन-महोत्सवो मे इसे रोपने के निमित्त अधिक प्रचार किया जाना चाहिए।

राज परिवारो मे अशोक बडा समादृत रहा है। राजकीय वाटिकाओ मे अशोक फूलने के समाचार से ही राजप्रासादो मे प्रसन्नता की लहर दौड जाती थी। अशोक की पूजा मे व्यस्त महारानी धारिणी ने आज्ञा दी थी कि महाराज अग्निमित्र को कह दो कि मैं आय-पुत्र के साथ ही चलकर फूले हुए अशोक की शोभा देखना चाहती हू। अशोक वृक्ष की पूजा गन्धर्वो और यक्षो की देन है। प्राचीन साहित्य मे इसकी पूजा के उत्सवो का बडा सरस वर्णन मिलता है। असल पूजा अशोक की नही, बल्कि उसके अधिष्ठाना कन्दप देव की होती थी। इसे 'मदनोत्सव' कहते थे।

केवल स्त्रिया ही नही, उनके साथ उनके पति भी इस मदनोत्सव मे सम्मिलित होते थे। उनके बिना उत्सव की सफलता अधूरी मानी जाती थी। अग्निमित्र से राजकीय उद्यान मे मालविका के पाद-प्रहार से अशोक मे दोहद रा मचार किया गया था।

अग्निमित्र ने प्रमद वन मे उस अशोक की अनुपम शोभा देखी थी। फूलो के गुच्छो से लदा हुआ वह ऐसा दीखता था जैसेकि फूलो के गुच्छा का परदा बनाकर उस वृक्ष का शृगार किया गया हो। विदूषक ने तपनीय अशोक के खिलाये हुए फूलो की शोभा को सराहा था। राजा ने भी अनुभव किया था कि "इनका देर से फूलना अच्छा ही हुआ, क्योकि अब इसके आगे सब वृक्षो की शोभा फीकी लगने लगी है। ऐसा जान पडता है कि अशोक के जिन वृक्षो ने पहले फूलकर वसन्त के आने की सूचना दी थी, उन सबने अपने-अपने फूल इस अशोक वृक्ष को दे दिए हैं जिसके फूलने का उपाय अभी थोडे दिन हुए किया गया था।" वृक्ष मे फूल धारण करने की इच्छा को कवि 'दोहद' कहते है। सस्कृत के कवियो मे यह प्रसिद्ध था कि सुन्दरियो के चरण ताडन से अशोक मे दोहद का सचार होता है। इस बारे मे यह भी विश्वास था कि जी चाहने पर रमणियो के प्रयत्न से अशोक मे दोहद सचार किया जा सकता है और असमय मे भी उसके फूल खिलाए जा सकते हैं।

मालविका के पाद-प्रहार से पाच दिन की नियत अवधि मे खिल गये तपनीय अशोक का जब रानी धारिणी सत्कार कर रही थी, तो राजा ने अशोक के चारो ओर घूमते हुए कहा था, "देवी के हाथो इस अशोक का ऐसा आदर होना ही चाहिए, क्योकि यह भी वसन्त की लक्ष्मी का कहना न मानकर और वसन्त मे न फूलकर देवी के प्रयत्न करने पर अब फूल उठा है।"

स्वग से गिरी फूलमाला के स्पर्श से जब इन्दुमती मर जाती है तो शोक मे सतप्त अज उसकी बातें याद करके कह रहा है, "प्रिये ! जिस अशोक को तुमने अपने चरणो की ठोकर लगाई

थी, वह अब आगे चलकर फूलेगा तब तुम्हारे केशो को मैं जलदान की अजलि कैसे ले सकूगा ? हे सुन्दरी ! रुनझुन करते हुए विछुओ वाले तुम्हारे पैरा की ठोकर किसी को नही मिलती। पर तुमने वडी कृपा करके उस अशोक को ठोकर लगाई थी। तुम्हारे चरणो की कृपा को स्मरण करके यह अशोक वृक्ष अब फूलो के आसू वहाकर तुम्हारे लिये रो रहा है।" आसि-जनकारी नूपुर वाले चरणो के मदु आघात से अशोक के फूलने का वर्णन अनेक कवियो ने किया है। राजघरानो मे सामान्यतया रानी ही अपने सुनूपुर चरणो के आघात से इस रहस्यमय वृक्ष को पुष्पित किया करती थी।

कालिदास ने प्रिया के कानो मे झूलते हुए अशोक के किसलयो को भी विलासियो को मदमत्त करने वाला वताया था। वसन्तोत्सव मे मालविका ने अशोक के पत्तो के गुच्छे को कान पर लटकाकर अशोक वृक्ष को पैरो से ठोकर मारी थी। अभिसार के लिए अशोक कुज वहुत अच्छे माने जाते थे। महारानी धारिणी राजा से कहती ह, "आयपुत्र ! लीजिए, आपके लिए अशोक का यह ऐसा सकेत-गृह बना दिया है जहा आप युवतियो से अकेले मे मिल सकते है।"

महाराजा भोज के सरस्वती कण्ठाभरण से जान पडता है कि अशोक-पूजा का यह मदनोत्सव त्रयोदशी के दिन होता था। रत्नावलि मे भी इस उत्सव का वडा सरस और मनोहर वणन मिलता है।

कालिदास का यक्ष वसन्त मे अपनी प्रिया को याद करता हुआ सोचता है, "अशोक के वृक्षा मे मूगे जैसे लाल रग की कोपलो के साथ जट से ही फूलो के गुच्छे निकलकर ऊपर तक

खिल आए हैं। हे प्रिये ! तेरी जैसी विरही नवयुवतियों के हृदय मे ये शोक पैदा कर रहे हैं।" प्रिया के शोक मे दु खी हृदयो मे अशोक के भडकीले फूल एक अजीब कसक पैदा कर देते हैं। वैदूय मणि के समान विमल जल वाली पम्पा का वासन्तिक सौन्दय निहारते हुए राम को स्मरवर्द्धक अशोक के दशन हो जाते हैं। पिया के अभाव मे अब उन्हे लाल फूलो के गुच्छे लाल अगारो की तरह दीखते है, ताम्रवर्णी किसलय अग्नि की उठती हुई ज्वालाए और फूलो पर मडराते हुए भौरा की गुजार आग की लपटो का शब्द। वे लक्ष्मण से कहते है, "सूक्ष्म पलको वाली, सुन्दर बालो वाली, मृदुभाषिणी प्रिया को देखे बिना तो जीना ही व्यथ है।" मर्यादा पुरुषोत्तम के चित्त मे अशोक सीता का भ्रम पैदा करता था। सीता के वियोग मे वे ऐसे पागल हो गये थे कि एक दिन स्तन के समान पुष्प स्तवको के भार से झुके हुए अशोक के एक लता सदृश पतले पेड को उन्होने सीता समझकर गले लगाना चाहा। उनका यह पागलपन देखकर लक्ष्मण ने उन्हें वहा से हटाया था। सीता के हरण के बाद राम ने इस वृक्ष को इस प्रकार सम्बोधित किया था, "शोक को दूर करने वाले हे अशोक ! प्रिया का दशन कराके मेरे चित्त के शोक को न् शीघ्र दूर कर दे।"

अशोक को जो सम्मान कालिदास मे मिला, वह अपूर्व था। मालविकाग्निमित्र के कथानक की पृष्ठभूमि मे अशोक छाया के समान साथ चलता है। अपने सभी काव्यो मे महाकवि ने इसे नही भुलाया। यह कल्प कवि इस अद्भुत सौदय वाले वक्ष की रमणीयता पर मुग्ध था। अपनी उपमाओ मे उसने इसके फूलो, किसलयो और कमनीय वृक्षो को बार-बार याद

किया है। कुछ उपमाए हम यहा दे रहे हैं

पुरुरवा की अनोखी सगमनीय मणि को एक पक्षी मास का लोथडा समझकर उडा ले गया था। आकाश मे चक्कर लगाता हुआ वह ऐसा दीखता था जैसेकि दिशा के माथे पर अशोक पुष्प गुच्छ के समान लाल चमकती हुई चूडामणि को अपनी चाच से वाध रहा हो। जैसे नई कोपलो वाला आम का पेड अशोक लता की लाल कोपलो के साथ मिलकर मनोहर लगता है, वैसे हो अज ने जब अपनी नई व्याही बहू का हाथ थामा, तब वे बहुत सुन्दर लगने लगे। कालिदास का वसन्त 'लाल अशोक के समान अमृत भरे अधरो वाला' है। लाल अशोक की लालिमा से ललनाओ के बिम्ब फल जैसे ओठो की ललाई भी लजाती है। राजशेखर ने लाल किसलयो की तुलना अधरोष्ठ की लालिमा से की है। बाल्हीक रमणियो के अधरोष्ठो पर जो दन्तक्षत बन गए है, वे अशोक के लाल प्रवाल सदृश दीख रहे हैं।

प० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अशोक के फूलो पर एक साहित्यिक निव ध लिखा था। इस विषय पर उसमे महत्वपूर्ण विचार किया गया है। उनके विचारो को हम यहा सक्षेप मे दे रहे है

"सस्कृत साहित्य मे अशोक का प्रवेश और निगम दोनो ही विचित्र नाटकीय व्यापार ह। कालिदास के काव्यो मे यह जिस शोभा और सौकुमार्य का भार लेकर प्रवेश करता है, वह पहले कहा था। उस प्रवेश मे नव-वधू के गृह-प्रवेश की भाति शोभा है, गरिमा है, पवित्रता है और सुकुमारता है। फिर एकाएक मुगलिया सल्तनत की प्रतिष्ठा के साथ-ही-साथ यह मनोहर

पुष्प साहित्य के सिंहासन से चुपचाप उतार दिया गया। नाम तो लोग बाद मे भी लेते थे, पर उसी प्रकार जिस प्रकार बुद्ध, विक्रमादित्य का। पहले यह कोमल कपोलो पर कर्णावतस के रूप मे झूलता था और चचल नील अलको की अचचल शोभा को सौ गुना बढा देता था। वह महादेव के मन मे क्षोभ पैदा करता था और मनोजन्मा देवता के एक इशारे पर कधे पर से फूट उठता था। अशोक किसी कुशल अभिनेता के समान झम से रगमच पर आता है और दर्शको को अभिभूत करके झपाक से चला जाता है। क्यो ऐसा हुआ ? कन्दर्प देवता के बाणो की कद्र तो आज भी कवियो की दुनिया मे ज्यो की-त्यो है। अरविन्द को किसने भुलाया, आम कहा छोटा गया और नीलोत्पल की गाथा को कौन काट सका ? नवमल्लिका की अवश्य ही अब विशेष पूछ नही है, किन्तु उसका इससे अधिक कद्र कभी थी भी नही। भुलाया गया अशोक और यह मनोहर पुष्प भुलाने की चीज थी क्या ? ईसवी सन् के आरम्भ के आसपास अशोक का शानदार पुष्प भारतीय धर्म, साहित्य और शिल्प मे अद्भुत महिमा के साथ आया था। उसी समय शताब्दियो के परिचित यक्षो और गन्धर्वो ने भारतीय धर्म साधना को एकदम नवीन रूप मे बदल दिया था। पण्डितो ने शायद ठीक ही सुझाया है कि गन्धर्व और कन्दर्प वस्तुत एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न उच्चारण हैं। कन्दर्प देवता ने यदि अशोक को चुना है तो यह निश्चित रूप मे एक आर्येतर सभ्यता की देन है। कन्दर्प यद्यपि कामदेव का नाम हो गया है, तथापि है वह गन्धर्व का ही पर्याय। शिव से भिडने जाकर एक बार यह पिट चुके थे, विष्णु स डरते रहते थे और बुद्धदेव से भी टक्कर लेकर लौट आए थे। लेकिन

के मासपेशिक तन्तुओ पर सीधा कार्य करती है। ऊत्यातव (मेनोर्‌हेजिआ), गर्भाशय-रक्त स्राव (मेट्रोर्‌हेजिआ) इत्यादि गर्भाशयिक रक्त-स्राव के सभी रोगियो को, जिन्हे अगट के प्रयोग की सलाह दी जाती है, इसके देने से लाभ होता है। गर्भाशय मे बन जाने वाले तन्त्वर्बुदो (यूटेरीन फाइब्रोयड्स) के कारण या अन्य कारणो से उत्पन्न होने वाली मासिक स्राव की अधिकता (मेनोर्‌हेजिआ) मे विशेषकर तथा गर्भाशय के रोगो मे सामान्यतया इसका बहुत व्यवहार किया जाता है। अशोक की छाल को दूध मे पकाकर बनाये काढे को चक्रपाणि, रक्त-प्रदर, श्वेत प्रदर तथा गर्भाशय की निबलताओ मे देते है। दो छटाक (११६ ग्राम) छाल को ११६ ग्राम दूध और आठ छटाक (४६४ ग्राम) पानी मे पकाए। पानी का अश उड जाने पर दूध को दिन मे दो-तीन बार पिलाए। मासिक स्राव के चौथे दिन से यह दूध देना आरम्भ करना चाहिए और जबतक खून बन्द न हो जाय, देते रहना चाहिए। बारह ग्राम अशोक की छाल और बारह ग्राम सफेद जीरे को आधा लिटर पानी मे पकाकर चौथाई भाग बचा ले। इसमे चीनी मिलाकर सुबह पिलाये। इससे रक्त प्रदर का खून आना बन्द होता है। मासिक धम अधिक आता हो, तो बन्द हो जाता है। ०

मांगलिक फल

छुहारा
खजूर

छुहारा भारत मे सवत्र मागलिक फल माना जाता है।
विवाह तथा दूसरे मागलिक अवसरो पर पूजा के पदार्थों मे तथा भेट दिये जाने वाले पदार्थों मे छुहारा भी होता है। ऐसे प्रसगो मे मुह चलाने के लिए छुहारा देते ह। कुछ मागलिक समारोहो मे मौली मे पिरोकर इसे कलाई मे बाधते है और इसका बनाया कण्ठहार पहनते है। देवी-देवताओ की पूजा मे छुहारे के हारो से मूर्ति का शृगार किया जाता है। किसी बहन का भाई परदेश गया हो, तो वह छुहारे को भाई बनाकर उसे भैयादूज का टीका लगा देती है। इस छुहारे को वह सम्भालकर रख छोडती है और भाई के मिलने पर उसे शगुन के रूप मे दे देती है। हिन्दुओं के कमकाण्ड से छुहारा सम्बद्ध है। हिन्दू सस्कृति के आधारभूत, प्रत्येक हिन्दू के जीवन से सम्बद्ध, सोलह सस्कारो मे किये जाने वाले यज्ञो मे इसकी आहुति दी जाती है। आयसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने पवित्र यज्ञाग्नि मे हवि देने के लिए जो सामग्री उपदिष्ट की है, उसमे मधुर द्रव्यो के अन्तर्गत छुहारे का परिगणन किया है। ईसाइयो और मुसलमानो के पवित्र ग्रथो मे वर्णित खजूर न भारतीय मुसलमानो को भी प्रभावित किया है। हम अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय की मुद्रा पर खजूर के वृक्ष को अकित देखते हैं।

सस्कृत कवियो को खजूर के फलो की शोभा ने आकृष्ट किया था। राजेश्वर ने लिखा है कि वसन्त के प्रभाव से खजूरा के पुष्प-गुच्छ खिल उठे ह। आदि कवि वाल्मीकि ने खजूर पुष्प की उपमा इस प्रकार दी है—"चावलो से भरे हुए, सोने के

रग वाले, कुछ झुके हुए शालियो के सिरे खजूर के फूलो सरीखे शोभायमान हो रहे हैं।" हरे पत्तो के बीच मे चमकीले नारगी रग के हजारो फलो के बोझ से झुके हुए बहुत-से गुच्छो के कारण मादा वृक्ष जून मे दर्शनीय होता है। हरिद्वार मे बरसात के आरम्भ मे फल पक जाते है। फल लगभग ढाई सेण्टीमीटर लम्बा, पीला, पकने पर लाल भूरे रग का होता है। जगली जाति मे मीठा गूदा स्वल्प मात्रा मे होता है। नब्बे सेण्टीमीटर लम्बे, चपटे, अवनत मोटे डण्ठल के सिरे पर घने पतले लम्बायमान लम्बी सीखो पर फल गुच्छो मे लगते है।

छाया की दृष्टि से यह पेड बेकार है, इसलिए एक सन्त ने खजूर के लम्बे पेड की निरर्थकता को इन शब्दो मे अभिव्यक्त किया है—

बडा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड खजूर।
पछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर॥

खजूर का तना इतना पक्का होता है कि उसके साथ हाथी जैसे बलशाली पशु भी बाधे जाते है। कालिदास ने रघु की दिग्विजय का वर्णन करते हुए लिखा है कि नागकेसर के फूलो पर बैठे हुए भौरो को जैसे ही खजूर के तने से बधे हुए रघु की सेना के हाथियो के कपोलो से टपकते हुए मद की गन्ध मिली, उन्हे छोटकर इन पर आ टूटे। जगली खजूर की लकडी का पानी की नालिया बनाने मे उपयोग होता है। भवन-निर्माण मे तथा अन्य प्रयोजनो मे भी यह प्रयुक्त होती है। खराद के लिए यह उपयोगी है। प्रति घनफुट लकडी का भार लगभग अठारह किलोग्राम है। गाव वाले अपनी झोपडियो मे बल्लियो तथा शहतीरो के रूप मे इसके तने का उपयोग करते

है। पिण्ड खजूर का तना दरवाजो, दरवाजो की चौखटो, शहतीरियो, फट्टो, पानी की नालियो, पुल बनाने आदि के काम आता है। लकडी ईंधन के रूप मे जलाई जाती है।

नीचे के कुछ पत्तो को काटकर पत्तो की जड मे से नीरा प्राप्त की जाती है, तने मे एक गहरा, फच्चर-आकृति, गढा खोद देते है। इस गढे के आधार पर बास का नलकीनुमा एक छोटा-सा टुकडा लगा देते है। इसके नीचे लकटती हुई एक हाण्डी तने से बधी रहती हैं। गढे मे से रिसता हुआ स्राव बास की नलकी मे टपकता हुआ हाण्डी मे इकट्ठा होता जाता है। भोर होते ही प्रतिदिन इस रस को निकालकर ताडी के केन्द्र मे ले जाया जाता है। इस प्रयोजन के लिए काम आने वाले सभी पेडो का सरकार से लाइसेन्स लेना पडता है। ऐसे पेडो पर धातु का एक छोटा लेबल लगा रहता है जो यह दिखाता है कि इसका कर दिया जा चुका है।

खजूर के रस को 'खजूरी' कहते है। महात्मा गाधी ने इसे 'नीरा' नाम दिया था। यह विटामिनो मे बहुत समृद्ध है। तडके सूर्योदय से पूव ही इसे पी लिया जाय तो यह ऊष्मा निवारक, शीतल, मूत्रल, तृपाहर और पौष्टिक पेय होता है। अनेक लोग नीरा को प्रतिदिन प्रात काल नियम से पीते है। चैत्र मे नीरा अधिक स्वादिष्ट और मधुर होती है। अपने उपयोगी गुणो के कारण यह चैती नीरा बहुत अधिक प्रशसित है। रखा रहने से इसमे खटास और मादकता पैदा हो जाती है। गाव वाले भपके मे खीचकर इसकी मदिरा तैयार कर लेते हैं। कैयदेव ने खजूरी की शराब को मादक, पित्तकर, रुचिकर, दीपन, बलकारक, वीर्यवद्धक तथा वातकफहर बताया है।

खजूर के सभी वृक्ष टेढ़े-मेढ़े तनों वाले दीखते हैं। अनजान आदमी इन्हें देखकर सोच सकता है कि खानों वाले टेढ़े-मेढ़े तने की यह कोई नई जाति की खजूर तो नहीं है। ऐसे प्रदेशों के बागीचों में ही सीधे-सच्चे तने वाले वृक्ष मिलते हैं। यानी खजूर का वृक्ष पचास-साठ साल तक जीवित रहता है। जब यह आठ वर्ष का होता है तो उसमें से रस निकालना शुरू कर देते हैं। यह रस या नीरा निकालने का उपक्रम बरसात के बाद अक्तूबर में आरम्भ होता है और मई तक चलता है। वृक्ष सामान्यतया प्रति वर्ष चार-छह महीने नीरा दे देता है और पच्चीस से चालीस बरस तक देता रहता है। एक वृक्ष से प्रति-दिन औसत ढाई लिटर नीरा मिल जाती है। नीरा में इक्षु-शर्करा (सूक्रोज) का औसत परिमाण दस प्रतिशत होता है। नीरा के भार का दस से पन्द्रह प्रतिशत गुड़ बनता है। एक वृक्ष से एक मौसम में अधिक से-अधिक साढ़े तेईस किलोग्राम गुड़ मिल सकता है। नीरा निकालने वाला आदमी प्रतिदिन बीस से चालीस वृक्षों से नीरा इकट्ठी कर सकता है [illegible]

से छह-सात किलोग्राम गुड मिल सकता है। एक दिन नीरा लेने के बाद वृक्ष को तीन दिन आराम दिया जाता है।

फालतू जमीनो मे खजूर के पेड रोपे जाकर उनसे नीरा निकालने तथा गुड बनाने के उद्योग के विकास की बहुत सभावनाए हे। प्रति एकड मे खजूर के पाच सौ पेड उगाए जा सकते है। कहते है कि कौआ और छोटा तोता—ये दो पक्षी ताडी को शौक से पीते है। यह भी कहा जाता है कि तोतो पर इसका नशीला प्रभाव देखा जाता है। पिंड खजूर और जगली खजूर के पत्तो से चटाइया, पखे, टोकरिया, थैले, झाडू आदि बनाई जाती है। छतो की आच्छादन सामग्री मे ये काम आते है। पत्तो के डठलो का गोला करके पीट लेते हैं, प्राप्त रेशो को बटकर रस्सिया बनाते हं। कुए से पानी निकालने की डोरियो के लिए यह रेशा उपयोगी है। डठलो का कागज बनता है। पत्ता से नरम रेशे प्राप्त किए जा सकते है। पत्तो के डठलो की छडिया, क्रेट्स और टोकरिया बनती है। गाव के छोटे बच्चे इन डठलो का उपयोग हॉकी स्टिक के रूप मे करते हैं। इनका निचला सिरा चपटा होता है, जो गेद पर चोट करने के लिए उपयुक्त होता है।

पत्ते के डठल का आधार बोरे जैसा होता है जो तने को आवेष्टित करता है। इसकी रचना तन्तुमय जाल के समान होती है। इसे 'कवल' या 'खजूर का बोकला' कहते ह। इससे प्राप्त रेशे के रस्से बनते है। बैलो के ऊपर रखी जाने वाली काठियो मे इसे भरते हैं।

ससार के विभिन्न भागो मे पिंड खजूर न केवल मेवे के रूप मे प्रयुक्त होती है, अपितु मिस्र, अरब और ईरान मे मनुष्य

और पशु दोनो का प्रमुख आहार है। पिंड खजूर उत्तम आहार है, जिसमे ए बी डी विटामिन पाये जाते है। कालिदास के समय पिंड खजूर राजाप्रासादो मे बहुत पसद किया जाने वाला आहार था। राजा दुष्यन्त शकुन्तला से मिलने के लिए छटपटा रहे है तो माटव्य हसकर कहता है कि "जैसे कोई पिंड खजूर खाते-खाते ऊबकर इमली पर टूट पडे, वैसे ही आप भी रनिवास की एक-से एक बढकर सुन्दरियो को भुलाकर इस तापस कन्या पर लट्टू हो गए है।"

जगली खजूर का फल भी पिंड खजूर के सदृश होता है। परतु इसमे गुठली बहुत बडी होती है, गूदा मात्रा मे स्वल्प तथा कम मधुर होता है। भारत के कुछ रेगिस्तानी प्रदेशो मे स्थानीय लोगो का यह मुख्य आहार है। दुर्भिक्ष मे यह घटिया फल खा लिया जाता है। पके फल प्राय बाजार मे बिकने नही आते। पक्षी और बच्चे इन्हे खा लेते है। दिग्विजय यात्रा के प्रसग मे चन्द्रापीड राजा ने शिव-सिद्धाश्रम मे खजूरो से लदे हुए जो वृक्ष देखे थे, उन पर बेखटके पक्षी आते थे और पके फलो को अपनी चोचे मार मारकर खडित कर देते थे। पक्षियो को उडाया ही नही जाता था। मुलतान मे खजूर की एक ऐसी किस्म भी होती है जिसमे बीज नही होता। इस किस्म को वहा 'खस्सी' कहते है। यह ताजी और सूखी दोनो रूप मे बाजारो मे बिकती है।

खजूर-बहुल प्रदेशो मे दैनिक भोजनो के अन्दर अनेक प्रकार से खजूरो का प्रयोग होता है। पकी खजूर की गुठलिया पीसकर आटे मे गूध लेते है, इसकी रोटी स्वादिष्ट बनती है। कुछ देशो मे खजूरो की केक बनती है। छुहारो को चक्की मे

पीसकर बनाया आटा सत्तू की तरह यो ही फाक लिया जाता है। इस आटे की रोटिया भी सेंकी जाती हैं। व्यजन के अभाव मे गरीब लोग पके खजूरो के साथ ही रोटी खा लेते हैं। जैसे उत्तर प्रदेश मे गुड या प्याज के साथ रोटी खाकर गुजारा कर लेते है। खजूर के छोटे पौधो के काड को भूमि मे से खोदकर बाहर का मोटा छिलका उतार लेते हैं। अन्दर से काड मृदु गूदे के रूप मे निकलता है। यह गोल और पचास-साठ सेण्टीमीटर लम्बा कन्द दीखता है। मलाई की बरफ के समान इसके कतरे काटकर लोग पचास पैसे का स्लाइस बेचते है। दिल्ली और हरिद्वार मे इसे खोदकर लाने वाले इसके अभिज्ञान को रहस्य बनाकर रखते ह। इसके गुणो को बढा-चढाकर बखान करते हुए वे इसे अमरकन्द, शिवकन्द आदि नामो से बेचते हैं। वे इसे चित्रकूट की उपज बताते है। यह प्यास को शात करता है। मुलतान मे इस गूदे को कच्चे नारियल के सदृश मानते है। इसलिए इसे भी 'गिरी' कहते हैं। इसका अचार भी डाला जाता है। पिंड खजूर के नये मुलायम पत्ते चाव से खाये जाते हैं। इसके ताजे पुष्प-शीर्षों को आसुत करके निकाला हुआ सुगधित इत्र शर्बत बनाने के काम आता है। ०

श्रीकृष्ण की लीला
का साक्षी

कदम्ब

कदम्ब गण मे तीन जाति के वृक्ष हैं जो भारत और मलय के जगलो मे पाये जाते है। इनके फूल छोटे और गोलाकार मूर्धाओ पर इकट्ठे लगे रहते है। पाच पखुडिया अशत जुड़-कर एक लम्बी पीकाकार नलिका बनाती है,जिसके अन्दर पाच पुकेसर लगे होते है। पखुडियो के स्वतत्र भाग कलिका के अन्दर एक-दूसरे के ऊपर लिपटे रहते हैं। भारत मे इस गण की केवल एक जाति का कदम्ब पाया जाता है।

औद्भिदी के आधुनिक विद्वान इसे आन्थोसेफालुस (ए० रिच)कहते है। आन्थोसेफालुस ग्रीक भाषा के दो शब्दो मे मिलकर बना है। पहला शब्द आन्थोस है जिसका अर्थ है फूल। दूसरा शब्द है केफालोस जिसका अथ है सिर। इण्डिकुस का अथ है भारतीय। सस्कृत और भारतीय भाषाओ मे प्रचलित नाम 'कदम्ब' के आधारपर इस वृक्ष को पहले'आन्थोसेफालुस कदम्ब' कहते थे। औद्भिदी के पुराने साहित्य मे इसका एक नाम 'नौक्लिस कदम्ब' भी मिलता है।

हिमालय के निचले प्रदेश मे, नेपाल मे पूव की ओर, पूर्वी बगाल, असम, उत्तरी सरकार मे, कनारा मे पश्चिम तट मे, मलाबार मे यह वृक्ष पाया जाता है। भारत के गम भागो मे बहुत-सी जगहो पर, चीन और मलय मे यह उगता है।

कदम्ब एक ऊचा वृक्ष है। इसका तना सीधा ऊचा चला जाता है। मोटी शाखाए तो दिशाओ मे बढती हैं परतु छोटी शाखाओ मे नीचे लटकने की प्रवृत्ति होती है। पर्णावली घनी गोल मूर्धा बनाती है।

पत्ते बारह से तीस सेण्टीमीटर लम्बे, चर्मश, ऊपर से चिकने, चमकीले, गूढे हरे होते हैं जिन पर हलके रग की नाडिया दिखाई देती हैं। पत्तो का निचला पृष्ठ हलके रग का होता है और सामान्यतया सूक्ष्म रोमो से ढका रहता है। इनका सिरा नोकदार और वृन्त छोटा होता है। शाखाओ के ऊपर ये एक-दूसरे के सन्मुख जोडो मे लगते है। परिपक्व वृक्षो के पत्तो की तुलना मे छोटे पौधो के पत्ते बहुत अधिक बडे होते है।

कदम्ब का गेंद जैसा जो गोल फूल दीखता है, वह वस्तुत बहुत-से छोटे फूलो का समूह है। एक छोटी शाखा के सिर पर छोटे डण्ठल पर पुष्प कन्दुक लगती है। इस कन्दुक के प्रत्येक फूल को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि पुष्पकोश हलके हरे रग का या शर-वण है। जबतक ये छोटे फूल खिले नही होते और कलिकाओ के रूप मे होते है, तो यह कन्दुक हलके हरे छोटे-छोटे बिन्दुओ से चित्रित होता है जो बन्द पुष्पकोशो के रगो के कारण ऐसे दीख रहे होते है। जब फूल खिल जाता है और नारगी रग की पखुडिया पुष्पकोशो से बाहर बढ जाती है तो ये सिर नारगी गेंदो मे परिणत हो जाते हे। डिम्बाशय के सिरे के ऊपर पराग कणो को ग्रहण करने के लिए सफेद रग की कुक्षि पखुडियो के ऊपर बढी हुई होती है। पखुडियो के खिलने पर कन्दुक का आकार बढ जाता है। बहुत-सी कुक्षिओ के निकल आने से नारगी रग की पखुडियो की पृष्ठभूमि पर यह कुक्षिओ का सफेद रग बडा भला लगता है।

बाहर निकली हुई इन कुक्षिओ के कारण शोभा पा रहे फूल ने कालिदास को आकृष्ट किया था। यक्ष का सन्देश ले जाते हुए मेघ जब विदिशा के पास नीच नाम की एक पहाडी

पर पहुचा, तो फूले हुए कदम्ब के वृक्षों को देखकर ऐसा जान पडता था मानो मेघ से मिलने के कारण उनके रोम-रोम सिहर उठे है। विस्तीण शाखाओ वाले बड़े मुकुट से लटकती हुई हरी डालियो पर ये मनोहर सुगन्ध वाले सफेद सुनहरी गोले वैभव-शाली प्रामादो के बहुमूल्य झाड-फानूसो के सौन्दय को भी मात कर रहे होते है। वन मे चारो ओर खिले हुए कदम्ब के फूल ऐसे लगते है मानो वर्षा के नए जल से गरमी दूर हो जाने पर जगल मगन हो उठा हो। कालिदास कहते हैं, "जैसे कोई प्रेमी अपनी प्यारी के लिए तरह-तरह के फूलो के आभूषण बनाए वैसे ही वर्षाकाल भी, ऐसा लगता है, मानो वह अपनी प्रेमिका के लिए जुहो को नई-नई कलियो तथा मालती और मौलश्री के फूलो की माला गूथ रहा है और उनके कानो के लिए खिले हुए ताजे कदम्ब के फूलो के कर्णफूल बना रहा है।" महर्षि वाल्मीकि कहते है, "कदम्ब के नये फूलो को देखकर भौंरे प्रसन्न हो उठे और उनका मकरन्द पीने लगे। जगलो मे मोर नाचने लगे है, कदम्ब की डालियो पर फूल खिल गए हैं, गौओ के प्रति साड आकृष्ट हो गए है और धरती धान्य तथा वनो से शोभिन हो उठी है।" वर्षा और हेमन्त ऋतु के सधिकाल के वणन मे भारवि ने लिखा है, "हस की बोलियो के साथ मदमस्त मोरो की कूजन और कदम्ब के फूलो की बारिश के साथ कुमुद के जगल अतिशय प्यारे लगते हैं। अच्छे गुणो मे जब अच्छे गुण मिल जाते है तो उनका उत्कप हो जाता है।"

कालिदास के समय बरसात मे कदम्ब के नये फूलो की मालाए गूथकर स्त्रिया अपने जूडो मे बाधती थी। अलकापुरी

की कुल वधुए भी कदम्ब के फूलो से अपनी माग सवारा करती थी।

कदम्ब पुष्प की सुरभि मे जो मादकता है, उसके लिए कालिदास कहते है, "कदम्ब, शाल, अर्जुन और केवडे से भरे हुए जगल को कपाता हुआ और उन वृक्षो के फूलो की सुगध मे बसा हुआ और चन्द्रमा की किरणो से तथा बादलो से ठडा होकर बहने वाला वायु किसे चचल नही कर देता।" भारवि (छठी-सातवी शती) ने अपने आदर्श पुरुष अर्जुन को इस चचलता से ऊपर रखा है। वे कहते है, "कदम्ब के फूलो का परिमल लिये हुए बहती हुई वायु मे, मोरो की मस्ती भरी मधुर बोलियो मे साधारण आदमी का चित्त तो चचल हो जाता है, परन्तु अर्जुन तो महान् पुरुष थे इसलिए उनकी समाधि का टूटना इतना सुगम नही।"

कदम्ब के फूलो के सौन्दर्य के साथ मोरो के नाचने का मेल सस्कृत के अनेक कवियो ने स्थापित किया है। सीता पूछती हैं, "प्रिय ! फूले हुए कदम्ब वृक्षो के ऊपर, जहा मोर नाच रहे हैं, उस पहाड का नाम क्या है ?" सीता को कदम्ब का वृक्ष बहुत प्रिय था। सीता की खोज करते हुए राम पूछते ह, "कदम्ब ! तुझे प्यार करने वाली प्यारी सीता तूने देखी है ? हे कदम्ब ! सुन्दर मुख वाली सीता को यदि तू जानता है तो बता।"

जून मे इसके फूल निकलने शुरू होते है और अगस्त तक खिलते रहते है। इन सुन्दर पुष्प कन्दुको को दिन भर तो छोटे बच्चे तोडते रहते है। वे इससे गेंद की तरह खेलते है और शौकीन लोग इन्हे फूलदानो मे सजाकर अपनी बैठक की शोभा मे चार चाद लगाते है।

दिन मे फूलो पर एक भी मधुमक्खी नही मिलती। रात ढलते ही मधु को लोभी हजारो मधुमक्खिया फूलो पर धावा बोल देती है। [illegible] होने पर भी सारा वृक्ष व्यस्त मधुमक्खियो की गुजार से व्याप्त रहता है। सुबह बहुत तडके ही हम फिर इसे मधुमक्खियो की चहल पहल का केन्द्र पाते हैं। कदम्ब के फूलो पर मण्डराती हुई मधुमक्खियो से कालिदास के विरही यक्ष ने अपनी प्रेयसी के पास जाने का मार्ग पूछने के लिए कहा था। रेवा से आगे बढ जाने पर मेघ को यक्ष कहता है, "जब तुम जल बरसाते चले जा रहे होगे, उस समय अधपके हरे-पीले कदम्ब के फूलो पर मडराते भौरे तुम्हे अगला रास्ता बताते जायगे।"

हिंदू लोग देवालयो मे इसके फूलो को समर्पित करते हैं। कदम्ब के साथ हिंदुओ के अनेक धार्मिक तथा पौराणिक सम्बध जुडे हुए हैं। श्रीकृष्ण का यह प्रिय वृक्ष रहा है। कदम्ब की छाया के नीचे वे राधा और सखियो के साथ रास रचते रहे। श्रीकृष्ण की नानाविध बाल लीलाए फूले हुए कदम्ब वृक्षो के नीचे ही सम्पन्न हुई है। कल्पना की जाती है कि दैवीशक्ति कदम्ब वृक्षो के बगीचे मे निवास करती है। यह कहा जाता है कि बोधि वृक्ष कदम्ब के एक बीज मे प्रादुर्भाव होकर क्षण भर मे महान रूप धारण कर गया। प्राचीन हिंदू कदम्ब के फूलो की सुगध की नूतन मदिरा की मादक गन्ध से तुलना करते थे। उनका विश्वास था कि रूठे हुए प्रेमियो को मनाने के लिए इसमे अद्भुत क्षमता है। सस्कृत मे इसका एक नाम 'हलिप्रिय' है।

फूलो से एक शराब बनाई जाती है। फल यद्यपि खट्टा है,

परन्तु बहुत खाया जाता है। व्यजनो को स्वादिष्ट बनाने के लिए खटास के रूप मे भी फलो का गूँदा डालते है। चिमगादड और दूसरे अनेक प्राणी फलो को खाते है। सूक्ष्म बीजो को दूर-दूर तक फैलने मे इन प्राणियो से सहायता मिलती है। चिमगादड तो सारी रात बहुत बुरी तरह फलो को खाते रहते है और उसके नीचे की भूमि को तथा आसपास की जगह को विष्ठाओ से मलिन कर देते है। इन दोषो के कारण घरो के पास कदम्ब को रोपना अच्छा नही होता।

यह अत्यन्त सुन्दर वृक्ष अपनी सुनहरी पुष्प कन्दुको के कारण तथा नाजुक सुगध के कारण अतिशय प्रशसित है। छाया-वृक्ष के रूप मे यह सडको के किनारे रोपा जाता है। अपनी सुन्दर पर्णावली के कारण घनी छाया देने से यह छाया के प्रयोजन के लिए बहुत उपयुक्त है। पशुओ के चारे के लिए कभी कभी पत्ते छाये जाते है। चिकनी सतह वाले पत्ते पत्तलो और दोना के लिए उपयोगी है।

काष्ठ सफेद या पीले-से भूरे रग की होती है। प्रति घन फुट लकडी का भार लगभग अठारह किलोग्राम होता है। यह जल्दी टूट जाने वाली, घटिया किस्म की लकडी मानी जाती है। चिटागोग मे इसकी खात-नौकाए और डोगिया बनाई जाती हैं। लकडी मृदु है, इस पर नक्काशी अच्छी होती है, यह भली-भाति खरादी जा सकती है। इसकी परते बहुत अच्छी उतरती है। यह फर्नीचर, सस्ते कागज, दियासलाई की डिब्बियो, सन्दूको, चाय की पेटियो, शहतीरियो, कडियो, सस्ते तख्तो, जूट के कारखानो मे काम आनेवाली कडछियो के लिए उपयुक्त काष्ठ है।

छाल वलदायक समझी जाती है। ज्वर-हर के रूप मे काम आती है। यह ग्राही है, पचिश मे इसका काढा दिया जाता है। मुह मे छाले पड जाने पर, मुख पाक मे तथा इसी प्रकार के अ य मुख रोगा मे पत्ता के काढे से गरारे और कुल्ले किये जाते हैं। सप दश की चिकित्सा मे छाल को उपयोगी बताया जाता है। कायस् और म्हस्कर (१६३०) ने प्रतिपादित किया है कि शरीर मे विद्ध किये हुए सर्प विष को, चाहे वह फणियर साप का विष हो या मण्डली का हो, उतारने मे या नष्ट करने मे कदम्ब प्रभावोत्पादक नही है। ०

आरती के कपूर
की जननी

कपूर तुलसी

पूर्वीय अफ्रीका के केनिया प्रदेश की यह वन-सम्पत्ति है। तुलसी गण के इस क्षुप से कपूर निकाला जाता है, इसलिए इसका नाम 'कपूर-तुलसी' पड गया है। औद्भिदी के विद्वान इसे 'ओसिमुम फिलिमाण्ड्स्कारिकुम ग्वेर्के' कहते हैं।

प्रारम्भिक परीक्षणा से जब पता चला कि यह पौधा प्राकृतिक कपूर का अच्छा स्रोत है और इससे निकाला गया शुद्ध कपूर जब व्यापारिक क्षेत्रो मे भी आने लगा तो ससार मे सवत्र इसके बीजो की माग होने लगी। भारत मे ये बीज सर्वप्रथम देहरादून की वन-अनुसन्धानशाला मे मगाये गए। शाला की रसायन शाखा और गौण वन उपज शाखा के तत्कालीन अध्यक्ष डॉक्टर श्रीकृष्ण के प्रयत्नो से यहा इसकी कृषि आरम्भ की गई।

सावधानी से बोया जाय तो एक औंस (अठाईस ग्राम) बीजो से इतने पौधे तैयार हो जाते है कि एक एकड से अधिक क्षेत्र मे रोपे जा सकें। बीज बोने के चार-पाच सप्ताह बाद पौधे पुनरारोपण के योग्य हो जाते हैं। खेतो मे सिंचाई की व्यवस्था है तो सरदियो की समाप्ति पर फरवरी के अन्तिम सप्ताह से शुरू करके माच के दूसरे-तीसरे सप्ताह तक नर्सरी मे बीज बो देने चाहिए। अप्रैल मे पनीरी को उठाकर खेतो मे पौधे बिठाने चाहिए। पौधे साधारणतया तीस सेण्टीमीटर के अन्तर पर और डौले साठ सेण्टीमीटर के अन्तर पर रहने चाहिए।

सिंचाई के लिए पानी प्राप्त न हो, तो वारिश के सम्भावित समय से चार-पाच सप्ताह पूर्व नरसरिया मे बीज बोने चाहिए और बरसात शुरू हो जाने पर पुनरारोपण करना चाहिए।

जमीन मे नमी हो तो पौध लगाने के लिए यह उपयुक्त होती है। गीली या सूखी भूमि मे रोपण नही किया जाना चाहिए। लकडी या लोहे की खूटी से बनाये छेदो मे पौधो की नगी जडो को डालकर हाथ या पैर से चारो ओर की मिट्टी को दबाते जाना चाहिए। रोपण की सबसे सरल और अधिक प्रभावशाली विधि यह है कि खुरपे के फलक से धरती मे फच्चर बनाकर उसमे जड रखते जाय और खुरपे से ही साथ-साथ दबाते चले जाय। यह पौधा असावधान हस्तन को भी काफी हद तक सहन कर लेता है, इसलिए अधिक दूर के स्थानो मे भी ले जाया जा सकता है।

इसकी खेती के लिए पानी के मामूली निकास वाली चिकनी प्रमृदा सर्वोत्तम रहती है। जिन स्थानो पर पाला (तुपार) अधिक पडता है, वे स्थान इसके लिए बुरे हैं। लगभग ६०० से १,२०० मीटर ऊचाई तक यह उग सकता है। यदि ऐसी सम्भावना है कि अधिक वर्षा के पानी से खेतो मे बाढ-सी आ जायगी, तो पौधो को मेढो पर लगाना चाहिए। मेढो का रुख ऐसा हो कि फालतू पानी पौधो को बिना हानि पहुचाए निकल जाय।

एक एकड खेत मे लगभग बीस हजार पौधे लगते हैं। इतने पौधे तैयार करने के लिए लगभग ग्यारह वर्ग मीटर का टुकडा नसरी के लिए काफी होता है।

पौधे जब काफी बडे हो जाय और धरती के पास के पत्ते ज्यो ही पीले पडने लगें, उन्हे जमीन से दस-पन्द्रह सेण्टीमीटर ऊपर हसिये से काट लेना चाहिए। सबसे निचले पत्तो का पीला पडना पानी की कमी के कारण न होकर परिपक्वता के परिणाम-

स्वरूप होना चाहिए। स्थापना के प्रथम वप सितम्बर और दिसम्बर मे दो-चार कटाई की जानी चाहिए। आगामी वर्षों मे साल मे तीन कटाइया करनी चाहिए। पहली मई मे, दूसरी सितम्बर मे और तीसरी दिसम्बर मे। तुहिन से मार न दिये जाय तो पौधे साधारणतया चार-पाच साल जीवित रहते हैं। काटने के वाद फसल को खुली हवा मे सुखाना चाहिए। छाया मे सुखाना अधिक अच्छा रहता है। पीटकर सूखे पत्तो को तने से छुडा लेना चाहिए। केवल पत्तो का अश ही आसुत होता है। वायुशुष्क पत्तो मे जव पन्द्रह से बीस प्रतिशत से अधिक आर्द्रता न रहे, तो इन्हे बोरो मे भरकर या कमरे मे ढेर लगाकर भण्डारित कर सकते है। शीत ऋतु मे आसवन लाभदायक होता है, क्योकि ठण्डा करने के लिए काफी कम तापमान का पानी सुलभ होता है, जिससे कपूर तथा तेल का फलप्रद मघनन उपलब्ध हो सकता है। पत्र-सामग्री के भण्डारित करने से कपूर और तेल की उपलब्धि पर कोई प्रभाव नही पडता।

अमेरिका मे किये गए अनुसन्धानो के अनुसार अच्छे स्थानो पर साल मे तीन फसलें काटने से प्रति एकड चालीस टन से पचपन टन तक पत्तिया और टहनिया प्राप्त होती है। शाखाओ से पत्तियो को अलग करने पर लगभग आधा भार रह जाता है, इस प्रकार प्रति एकड २२ से २६ ७५ टन तक पत्तिया उपलब्ध होती हैं। सूखने पर इन पत्तियो का भार कम होकर प्रति एकड ४ ५० से ५ ५० टन तक रह जाता है।

स्थान, खेत का आकार, मजदूरी आदि के अनुसार कपूर का उत्पादन-मूल्य भिन्न-भिन्न होता है। सूखी पत्तियो मे से चार-पाच प्रतिशत कपूर मिश्रित तेल प्राप्त होता है। इस तेल

मे से लगभग सतत्तर प्रतिशत कपूर निकल सकता है। इस आधार पर एक एकड रोपस्थली से एक वर्ष मे औसतन सौ पौण्ड कपूर और तेल की उपलब्धि की आशा की जा सकती है।

उत्पत तैलो के आसवन के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले सामान्य तरीको द्वारा कपूर का आसवन होता है। अन्तर केवल यह है कि सघनक काफी चौडा होना चाहिए जिससे इसकी दीवारो पर से ठोस कपूर को सुगमता से खुरचा जा सके।

आसवन की प्रक्रिया मे कपूर के कण सघनक की दीवार पर जमने जाते हैं और तेल नीचे बोतल मे स्रवित होता रहता है। आसवन दो घण्टे मे समाप्त होता है। इसके पश्चात् सघनक को खोलकर भीतर जमे हुए कपूर को खुरच लेते है और तेल को छानकर अलग रख देते हैं। इस तेल मे भी कपूर का कुछ अश मिला रहता है जो बाद मे पृथक् कर लिया जाता है।

साफ करने के लिए कपूर को कोयले और चूने के साथ एक कढाही मे मिलाते हैं। सिकता-तापन पर इसे १६० शताश तक पन्द्रह-बीस घण्टे गरम किया जाता है। शीशे का एक ऊचा बरतन ऊपर ढक देते हैं। कपूर उडकर इसकी दीवारो पर जम जाता है।

युद्धकाल मे जब कपूर का मूल्य बहुत चढ गया था, कपूर-तुलसी की खेती मे लाभ था। परन्तु अब भाव गिर जाने से यह लाभप्रद फसल नही रही। मेरी सम्मति मे इसके बीजो को हमारे देश के विस्तृत वनो के अन्दर अनुकूल प्रदेशो मे बहुतायत मे बिखेर देना चाहिए। वन-अनुसन्धानशाला, देहरादून द्वारा

प्रयोग करने पर तथा देश के भिन्न-भिन्न केन्द्रो मे खेती करने से ज्ञात हो गया है कि यह पौधा भारत के किसी भी स्थान मे और सामान्यतया किसी भी धरती मे उग सकता है। पौधा बहुत सबल है और कडी धूप या अधिक वर्षा से नष्ट नही होता। रोग-कीटाणुओ द्वारा इसके नष्ट होने की सम्भावनाए नही है। गाय, बैल, भैस, भेड और बकरी तथा दूसरे ढोर इसे नही चरते। हमारे देश की परिस्थितियो मे जब यह पौधा प्राकृत बन जायगा, तो वनो से नाम मात्र के दामो पर केवल थोडी-सी मजदूरी से भरपूर परिमाण मे प्राप्त हो सकेगा। तब, इससे बनाया गया कपूर सस्ता रहेगा और हम विदेशी कपूर के बाजार को प्रतिस्थापित कर सकेंगे।

इसके फूलो से शहद की मक्खिया खूब रस लेती है। साल के अधिक हिस्से तक यह फूलता रहता है। तुलसी के समान इस पौधे को विविध रोगो की चिकित्सा मे उपयोग किया जा सकता है। आसवन से प्राप्त कपूर तथा तेल और कपूरजल-चिकित्सा मे और उद्योगो मे प्रचुर उपयोगी है। तुलसी-कपूर भी सामान्य कपूर की तरह चिकित्सा तथा उद्योग मे व्यवहृत किया जा सकता है। ०

लक्ष्मी की ईर्ष्या
की उपज

न्याज़बो

पद्मपुराण के अन्तगत कार्तिक माहात्म्य की एक कथा के अनुसार वृ दा के भस्म हो जाने पर विष्णु ने जगत का सहार करना शुरू किया था। तब उन्हे प्रसन्न करने के लिए लक्ष्मी, सरस्वती और पावती के दिये हुए तीन बीजो को देवो ने विष्णु के पास बो दिया था। पावती के बीज से 'तुलसी' पैदा हुई। लक्ष्मी ने चूकि ईर्ष्या से बीज दिया था, इसलिए उससे पैदा हुआ पौधा निन्दनीय समझा जाने लगा और इसी से उसे 'बबरी' कहने लगे। लौकिक व्यवहार मे भी हम देखते है कि तुलसी की अपेक्षा न्याजबो (बबरी) हीन समझा जाता है। सस्कृत के प्राचीन लेखको तथा आधुनिक औद्भिदीविदो के श्रेणीकरण मे ये दोनो एक ही गण—तुलसी (ओसिमुम)—के पौधे है।

हिन्दू लोग तो इस पौधे को धार्मिक कृत्यो मे विशेष महत्व नही देते। परन्तु भारतीय मुसलमान और बनि इसराइल देर से इसे सास्कृतिक महत्व का पौधा मानते है, और इसे वे उसी आदर और श्रद्धा से देखते है जसेकि हिन्दू लोग तुलसी को। बनि इसराइल के बहुत से धार्मिक कृत्यो मे, जैसे विवाहोत्सव मे और दु ख के अवसरो मे सब्जा का प्रयोग होता है। भारतीय मुसलमान भी इसे धर्म कर्मों मे बहुत प्रयोग करते है। बनि इसराइल और भारतीय मुसलमान भी अपने घरो मे और मजारो मे इस पौधे को रोपते है। उनके सामाजिक कार्यों मे सब्जा की शाखाए जरूर रखी जाती है।

पौधे मे मसाले की-सी तीव्र गन्ध होती है। उत्तर प्रदेश मे इसके पत्तो की चटनी बनाते है। पत्तो और छोटे-छोटे कोमल शाखा शिखरा का स्वाद चटपटा मसाले का-सा, ठण्डा, लुबाब-

दार और जरा-सा नमकीन होता है। इसकी गन्ध कुछ लौंग जैसी होती है। सूखे पत्ते लौंग के प्रतिनिधि के रूप मे बरते जाते हैं। भारत मे कई स्थानो पर ये सुखाये जाकर मसाले के रूप मे इस्तेमाल किये जाते है।

भारत मे यह पौधा सदियो से मसालो मे बरता जा रहा है। इग्लैण्ड मे यह अपनी मसाले की-सी सुगन्ध के कारण बहुत देर से लोकप्रिय है। तरी वाली सब्जियो और पुलावो मे पत्ते डाले जाते है। कछुए के शोरबे और चटनियो का यह अग है। फ्रेंच रसोई मे भी न्याजबो बहुत पसन्द की जाती है। सुनहरे पीले रग का उडनशील तेल परिमल कला मे और अनेक प्रकार के पेयो मे काम आता है।

हकीमो के चार तुख्मो मे एक बर्बरी के बीज है। उन्हे 'तुख्मे रेहा' कहते हैं। बगाल में इन्हे 'तोकमारी' कहते हैं। यह शब्द तुख्मे रेहा का बिगडा हुआ रूप है।

चिरस्थायी मलबन्ध मे शर्बत के साथ बीज खिलाये जाते है। इनका फाण्ट भी पुरानी कब्ज मे लाभ करता है। तेज दस्तावर दवा देने के बाद आतो मे क्षोभ को शात करने के लिए बीजो को ईसबगोल की तरह शबत से फाक्ते है। प्रवाहिका (डिसेण्ट्री) और अतिसार मे बीज लाभदायक होते है। बडो को चार माशे तक शर्बत के साथ या खाण्ड मिलाकर पानी के साथ फका देने से बहुत लाभ होता है। बीजो के लने की एक विधि यह है कि इन्हे थोडे से पानी मे भिगो देते है। भिगोने से वे फूलकर एक लेसदार पदार्थ बन जाते हैं। इसे बीजो का लुवाब-सा शीतनिर्यास कहते ह। इसमे खाण्ड मिलाकर उपर्युक्त अवस्थाओ मे खिलाते हैं। पुरानी पेचिश मे बीजो का

फाण्ट बनाकर देते है। अनाम मे शीतनिर्यास वमन और अतिसार को दूर करने के लिए दिया जाता है। यह मुख की दुगन्ध को भी दूर करता है।

पत्तो का रस पेट के कीडो को मारता है। अजीर्ण तथा उदरशूल मे और पेट के कीडो को मारने के लिए स्वरस पिलाते है। अफारे मे देने से पेट की वायु निकल जाती है जिससे रोगी को सास लेने मे सुविधा हो जाती है। अग्निदीपन के लिए फूलो का भी प्रयोग किया जाता है। बीजो का फाण्ट और कषाय बदहज्मी और नये तथा पुराने अतिसार की अच्छी दवा है। आधी छटाक ताजे पत्तो मे आधी छटाक अदरक या सोठ मिलाकर अच्छी तरह पीसकर इसकी अडतालीस गोलिया बनाये। प्रात और सायकाल पानी के साथ दो गोलिया प्रतिदिन लेना आतो की पुरानी शिकायतो के लिए उत्तम औषधि है।

भीतरी बवासीर मे बीजो का फाण्ट पिलाने से लाभ होता है। शर्बत के साथ बीजो को खूनी बवासीर मे और अभ्यन्तर अर्श मे खिलाते है। मलबन्ध न रहने देने से ये मस्सो को ऊपर उभरने का अवसर नही देते।

बच्चो की आतो की शिकायतो मे जड इस्तेमाल की जाती है। बच्चो के मरोडो और दस्तो के लिए बीज लाभदायक समझे जाते हैं, खासकर दन्तोद्गम के अतिसार मे। शिशुओ की पेचिश और अतिसार मे दो-ढाई रत्ती बीजो का चूर्ण शर्बत से देते है। कमजोर बच्चो के गले मे हो जाने वाले छालो मे पत्तो का गरम रस शहद के साथ दिया जाता है। बच्चो के गले के रोगो मे और कुक्कुर खासी मे रस मे शहद घोलकर पिलाते है। मलय मे पत्तो को पीसकर निकाला हुआ रस बच्चो की खासी मे देते

है। पजाब मे पत्तो और फूलो के रस की नस्वार बच्चो को दी जाती है जिससे नाक और सिर के रोग न हो।

बबरी उत्तेजक, कफ निकालने वाली और दीपक है। गियाना मे इसके पत्तो और शाखाओ का काढा जुकाम और बुखार मे दिया जाता है। मलय मे पत्तो को पीसकर पुल्टिस के रूप मे जुकाम दूर करने के लिए सिर पर रखते है। खासी मे बीजो का लुआब खिलाने से लाभ होता है। यह खाण्ड मिलाकर भी दिया जा सकता है। पत्तो का ताजा रस खासी मे बहुत लाभ करता है। यह छाती मे से कफ को निकालता है। कफ प्रधान रोगो मे बीजो का फाण्ट पिलाते हैं। पत्तो को उबालकर मलय मे खासी दूर करने के लिए पिलाते है। मलयवासी इस प्रयोजन के लिए पत्तो को पान के साथ चबाना अधिक पसन्द करते हैं। सूखी खासी में पत्तो के रस में शहद मिलाकर देने से बलगम आसानी से निकल जाती है और रोगी को शाति मिलती है। गले के रोगो मे पत्तो के ताजे रस को गरम करके शहद के साथ चटाते है।

बीजो का शबत बनाकर बुखारो मे देते है। यह पेशाब खुलकर ले आता है। जरा-सी अदरक के साथ या सोठ और काली मिर्च के साथ पत्तो का रस बुखारो की शान्तावस्था मे दिया जाता है। पौधो मे पसीना लाने के गुण होते है। जिन बुखारो को चढे हुए कुछ दिन हो गये हो या ऐसे ज्वर, जिनमें शरीर टूटता हो और अगो में वेदना होती हो, उनमें पत्तो के स्वरस को गरम करके पिलाने अथवा पचाग के काढे को पिलाने से पसीना आ जाता है और रोगी को आराम मिलता है।

पानी में भिगोने से बीजो पर एक अर्ध पारदर्शक लेस की

तह आ जाती है। यह लुआवदार जेली अन्त प्रयोग मे लेपक और शीतल है, जलन को शान्त करती है, कठिनाई से आने वाले मूत्र की रुकावट को दूर करती है और पेशाब खुलकर लाती है। फूल भी उत्तेजक, मूत्रल और शान्तिदायक होते है।

सुजाक में शीतल बीजो का प्रयोग किया जाता है। एक चाय के चम्मच पर बीजो से बनाई जेली को एक गिलास पानी मे घोलकर मिश्री से मीठा कर ले तो यह बहुत बढिया पेय बन जाता है जो प्रजनन और मूत्र-सस्थान के रोगो मे, जैसे सुजाक और मूत्राशय शोथ मे रोज पिलाया जाता है। वैद्य लोग बीजो का फाण्ट बनाकर पूयमेह और गुर्दो के विकारो की चिकित्सा के लिए बहुधा इस्तेमाल कराते ह।

बबरी में बाजीकरण गुणो की बहुत प्रशसा की जाती है। बीज वीय को गाढा करते है और वीर्य के स्राव को रोकते है, जिस कारण स्तम्भक नुस्खो मे वैद्यो और हकीमो द्वारा बहुत बरते जाते है। चार से ग्यारह माशे की मात्रा में बीजो का चूर्ण वाजीकरण के रूप में दिया जाता है। बीजो को कई बार पानी में भिगोकर खाते है। ये ठण्डे और बहुत पौष्टिक होते हैं। पूर्वी बगाल के मुसलमान तो इन्हे पानी में भिगोकर ताजगी देने वाले शीतल पेय के रूप में पीते हे। कनावार मे इन्हे कभी-कभी रोटियो में पकाकर खाया जाता है। बीजो का शीत निर्यास प्रसवोत्तरकालीन वेदनाओ को शात करता है।

वात नाडियो की शूलो मे पत्तो का काढा लाभदायक माना जाता है। जोडो के दर्दों मे शीत निर्यास खिलाया जाता है। मोच पर पत्तो का रस मलते है।

दाद पर पत्तो का रस लगाने से बडा लाभ होता है। आन्नान्त

भाग पर इसे दिन मे कई बार लगाना चाहिए। दाद को नष्ट करने वाली कुछ दवाओ का यह रस आधार बन गया है। रस का वाह्य प्रयोग फोडे-फुन्सियो को ठीक करता है, घाव से पीप बहने को बन्द करता है और कृमियो को मारता है। जख्मो पर से कीडा को हटाने के लिए सूखे पत्तो का चूण छिडकते हैं। दूषित व्रणो और दारियो पर लगाने वाले लेपो मे इसके बीज प्रयुक्त होते है। पानी मे भिगोने के बाद इनकी पुल्टिस बनाकर खराब जख्मो और नासूरा पर लगाते हैं। बीजा के गाढे लुआब को लगाने से कठिनाई से आराम आने वाले खराब फाडे ठीक हो जाते है। इसे व्रण शोथ पर लेप करते हैं। यह लेसदार लेप सूखकर व्रण पर दवाव डालता है और व्रण पक चुका हो तो उसे फाड देता है। व्रण के मुख पर लेप नही लगाना चाहिए। अन्दर पीप न बनी हो तो यह लेप सोज को कई वार दबा देता है।

नाक मे कीडे पड गये हो तो पत्ता के चूण का नस्य देने से लाभ होता है। नासा-कृमिया को मारने के लिए पौधे के कषाय से नाक को धोया जाता है। इससे स्थानिक सन्ताहरण के साथ-साथ पराश्रयीहर और कृमिहर कार्य भी होता है जिससे रोग उत्पन्न करने वाले कृमि निष्क्रिय हो जाते हैं और बाहर निकल जाते हैं। पत्तो के रस को टपकाने से नक्सीर बन्द हो जाती है।

कान मे दद और ऊचा सुनने मे पत्तो का रस कान मे डालते हैं। आख दुखने आने पर पत्तो का रस आख मे नेत्रबिन्दु की तरह डालने से आराम आ जाता है।

बिच्छू के डक मारने पर दद को कम करने के लिए पत्ता या मल्क डक वाले स्थान पर रखते हैं। साप काटने पर बीज

मुख मे रखकर चवाये जाते है। लुआब बन जाने पर आधे तो खा लेते हैं और शेष काटे हुए स्थान पर लेप कर देते है। डॉक्टर म्हस्कर के अनुसार, चरकाचार्य सब विषो पर पत्तो के स्वरस का प्रयोग करने का निर्देश देते है। वापट पत्तो के रस को पाच तोले की मात्रा मे पिलाते है। यूनानी चिकित्सक भी इसका सर्पदश मे वहुत उपयोग करते हैं। डॉक्टर म्हस्कर और कायम ने अपने परीक्षणो मे पत्तो को पीसकर दष्टक्षत पर लेप किया, पत्तो के रस की कुछ बूदे आखो तथा नथुनो मे टपकाईं, और पीने के लिए ग्यारह माशा रस दिया। इन महानुभावो द्वारा किये गए प्रयोगो के परिणाम दिखाते है कि न्याजबो सर्पविष मे कारगर औषध नही है।०

□□